कौल-कल्पतरु

# चण्डी

वर्ष ४७] मार्गशीर्ष २०४५ वि० : दिसम्बर १९८८ [संख्या ९

## सूचना

### प्रयाग, कुम्भ-मेला सं० २०४५ वि०—सन् १९८९ ई०

मकर-संक्राति २०४५ वि०—१४ जनवरी, १९८९ से प्रयाग का विराट् 'कुम्भ-मेला' प्रारम्भ हो रहा है। मेले की मुख्य अवधि माघ कृष्ण १–२० जनवरी, ८९ से माघ पूर्णिमा–२० फरवरी, ८९ तक है। इस मुख्य अवधि में 'अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन', 'कल्याण-मन्दिर प्रकाशन' द्वारा निम्न-लिखित आयोजन सम्पन्न होने की आशा है—

१. 'चण्डी' मासिक पत्रिका के पौषाङ्क (जनवरी ८९)—'भगवती गङ्गा-यमुना-साधनाङ्क' का २५ जनवरी ८९ को मेले में उद्घाटन।

२. २६ जनवरी ८९ से १० फरवरी ८९ तक 'कल्याण मन्दिर प्रकाशन' एवं 'चण्डी कार्यालय' द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण पुस्तकों का मेले में आयी हुई प्रख्यात संस्थाओं के कैम्पों एवं 'मेला-प्रशासन-कैम्प' में समालोचनात्मक उद्घाटन एवं पुस्तकों की प्रदर्शनी।

३. बसन्त पञ्चमी (११ फरवरी ८९) से माघ-पूर्णिमा (२० फरवरी ८९) तक दैनिक 'शाक्त-गोष्ठी' का आयोजन। इसमें शाक्त-बन्धुओं से देश में 'शाक्त-सङ्गठन' के प्रति विचार-विमर्श होगा एवं शाक्त-सम्मेलन की भावी रूप-रेखा निर्धारित होगी।

जो बन्धु मेले में आना चाहते हों, वे कृपया हमें तुरन्त लिखने की कृपा करेंगे। पहले से सूचना प्राप्त होने पर ही हमारे द्वारा निवास आदि आवश्यक सुविधा सुलभ हो सकेगी।

अतः सभी इच्छुक बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि इस सम्बन्ध में पूरी सूचना शीघ्र-से-शीघ्र हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे। यथा—१ कितने व्यक्ति मेले में आयेंगे ? २ किस तारीख को आयेंगे व कितने दिन मेले में रहना चाहेंगे ? ३ निवास की उनकी अपनी व्यवस्था है या नहीं ? आदि।

इसके अतिरिक्त सभी इच्छुक बन्धुओं की यह सूचनीय है कि वे अपने साथ शीत-कालीन वस्त्र, बिस्तर आदि साथ में लाने की कृपा करेंगे। भोजन की व्यवस्था यहाँ उन्हें स्वयं जल-पान गृहों में करनी होगी। सीमित साधनों के कारण हमारे द्वारा यह सुविधा प्राप्त न हो सकेगी।

सामान्य वार्षिक मूल्य : ४५-०० रु०

**सूचना— १. 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क के आगे के पृष्ठ**

'चण्डी' वर्ष ४७, अङ्क ६ (सितम्बर ८८) द्वारा 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क प्रारम्भ हुआ है। अङ्क ६ में इस विशेषाङ्क के २४ पृष्ठ दिये गये थे। अङ्क ७ में पृष्ठ २५ से ३२ तक दिये गये हैं। अङ्क ८ में उसके आगे के पृष्ठ ३३ से ४० दिये गये हैं। 'चण्डी' के आगामी अङ्क १२ में इस दुर्लभ विशेषाङ्क के शेष पृष्ठ दिये जायेंगे।

**२. 'चण्डी' वर्ष ४७ का आगामी अङ्क १०**

'चण्डी' वर्ष ४७ का यह अङ्क ९ (दिसम्बर ८८) आपकी सेवा में 'कुम्भ मेले' के कारण विलम्ब से जा रहा है। इसके पूर्व नवम्बर ८८ तक इस वर्ष के कुल ८ अङ्क आपको मिल चुके हैं।

'चण्डी' वर्ष ४७, अङ्क १० सभी पाठकों की सेवा में १० फरवरी को भेजा जायेगा, जो फरवरी १९८९ के द्वितीय सप्ताह तक सबको मिल जायेगा। यदि प्राप्त न हो, तो कृपया हमें सूचित करेंगे। 'कुम्भ मेले' के कारण अङ्क विलम्ब से जा पायेंगे।

**आचार्य द्विवेदी—पण्डित देवीदत्त शुक्ल की निःस्पृह सम्पादन-परम्परा की प्रतिनिधि**

**अनूठी सचित्र स्मारिका**

# संपादक की वाणी

अप्रैल १९८८ से अपने दूसरे वर्ष में यह 'स्मारिका' हिन्दी-जगत् में नए प्रतिमान स्थापित कर रही है। इसके द्वारा सच्चा ज्ञान होता है कि—

* आचार्य द्विवेदी एवं सम्पादक—शिरोमणि पं० देवीदत्त शुक्ल ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के निर्माण, विकास और प्रचार के लिए कैसा और किस प्रकार का अभियान प्रारम्भ किया, जो अब भी चल रहा है।
* राष्ट्र-भाषा हिन्दी के माध्यम से साहित्य, अध्यात्म, आयुर्वेद और ज्योतिष आदि के क्षेत्र में निःस्पृह भाव से कौन कहाँ, क्या महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।
* साहित्य, अध्यात्म, आयुर्वेद और ज्योतिष के द्वारा जीवन को किस प्रकार सार्थक बनाया जा सकता है।

**'सम्पादक की वाणी'** स्मारिका के अङ्कों की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से देश के तपे-तपाये साहित्यकार और समाज-सेवी महानुभाव कर रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि निर्धन बन्धुओं को यह 'स्मारिका' मुफ्त भेजी जाती है, केवल डाक-व्ययादि हेतु उन्हें पाँच रुपये वार्षिक भेजना होता है और जो यथा-शक्ति जितना दे सकते हैं, उतना प्रति-वर्ष भेजकर इस 'स्मारिका' के सहयोगी (१० रु०), सहायक (३० रु०), संरक्षक (१०० रु०), सम्वर्धक (३०० रु०), प्रतिपालक (५०० रु०) बन सकते हैं, जिनके शुभ नाम प्रत्येक अंक में छपते हैं और जिन्हें उपयोगी साहित्य उपहार-रूप में भेंट किया जाता है।

आज ही **'सम्पादक की वाणी'** की प्रति मँगाएँ और स्वयं उसकी अनूठी विशेषताओं का अनुभव करें।

**—सम्पादक : रमादत्त शुक्ल**

**चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग (उ० प्र०)—२११००६**

# कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४७] मार्गशीर्ष २०४५ वि०—दिसम्बर ८८ [संख्या ९

१ सम्पादकीय : हिन्दुओं की पूजा का रहस्य १
२ नाद-साधना : श्री शिवचरणलाल चौरसिया, नागपुर (महाराष्ट्र) ४
३ 'दूर-दर्शन' के छाया-पट पर 'चण्डी' के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी ६
४ भैरवी-चक्र और तत्त्व-चक्र : प्रो० श्री रंजन सूरिदेव, शिवपूजनसहाय मार्ग, पटना, बिहार ९
५ सुन लो मां, शेरों-वाली ! (कविता) : पं. वेणीमाधव त्रिपाठी, मुम्बई—९७ १२
६ श्री अम्ब-कृपा-दृष्टि-लाभ-स्तवः—'आशु-कवि' स्व० पण्डित हरिशास्त्री दाधीच १३
७ श्री दुर्गा-वन्दना : श्री नागेन्द्रदत्त वर्मा, संयुक्त निदेशक पर्यटन, गोरखपुर (उ० प्र०) १५
८ रुद्राक्ष-मन्त्र : पं० पू० स्वामी हिमालय अरण्य जी १६
९ श्री चण्डी-चरित-चित्रण : पं० जगन्नारायण देव शर्मा, 'कवि-पुष्कर', वाराणसी (उ० प्र०) १६
१० स्व० पण्डित महिधर जी डंगवाल : पं० रमाप्रसाद घिल्डियाल, प्रयाग (उ० प्र०) १७
११ श्री त्रिपुरसुन्दरी व उनकी साधना : डा० वल्लभदास विन्नानी, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता १९
११ श्री इन्द्राक्षी दुर्गा एवं श्री शिव-कवच-स्तोत्र : श्री श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अय्यंगार, श्रीरंगम २१

# सम्पादकीय

## हिन्दुओं की पूजा का रहस्य

यह संसार कर्म-क्षेत्र है। यहाँ सभी प्राणियों को कार्य करना पड़ता है। यहाँ बिना कर्म किए कोई रह नहीं सकता। मनुष्य अपने कल्याण की दृष्टि से निर्दिष्ट एवं अभीष्ट कर्म करते हैं। पशु-पक्षी अपने भरण-पोषण में रहते हैं तथा कीट-पतंगादि अपनी क्षुधा-पूर्ति के लिए भ्रमण करते रहते हैं।

इसीलिये संसार को एक प्रकार से जीवन-युद्ध का स्थान भी कहा गया है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रत्येक प्राणी को न्यूनाधिक संघर्ष करना पड़ता है, जिसमें युक्त-अयुक्त के अनुसार वह सफल या विफल होता है। सफल होने पर प्राणी को सुख तथा विफल होने पर दुःख का अनुभव होता है। इसी को दूसरे शब्दों में प्राणी की जय-पराजय भी कहते हैं।

जैसे एक व्यक्ति को भोजन बनाना है, वह उसके लिए अग्नि, जल, ईंधन, पात्र-रूपी शस्त्रों के प्रयोग द्वारा आटा-दाल आदि वस्तुओं से विधि-विधान - पूर्वक समुचित बल का प्रयोग कर एक प्रकार से युद्ध का कार्य करता है, तब वे सब उसके वशीभूत होकर—अपनी हार मानकर—अभीष्ट-उत्तम भोजन के रूप में परिणत हो जाते हैं। यदि उसके उक्त युद्ध-रूपी प्रयत्न एवं परिश्रम में किसी प्रकार की न्यूनता रह जाती है, तो उतनी मात्रा में भोजन-निर्माण में दोष प्रकट हो जाता है।

मनुष्य के समान पशु-पक्षी भी, चाहे वे आमिष-भोजी हों या शाक तथा अन्न-भोजी हों, आहार-रूपी युद्ध का प्रयोग करते ही हैं। कीट-पंतग भी आहार-रूपी युद्ध पर ही जीवित रहते हैं। इस प्रकार संसार के सभी प्राणियों को जीवन-निर्वाह के लिये कर्म-रूपी युद्ध में प्रवृत्त होना पड़ता है।

## कर्म-क्षेत्र में मानव मस्तिष्क का उत्तरोत्तर विकास

इस कर्म-रूपी युद्ध में केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसका मस्तिष्क उत्तरोत्तर उन्नति-शील होता जाता है। वह दिन-प्रतिदिन अपनी सांसारिक सफलता में अग्रसर होता है और विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करके अपने स्वरूप को अधिकाधिक दिव्य स्वरूप में रूपान्तरित करता है। पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि का मस्तिष्क सदा एक-सा ही रहता है--उत्तरोत्तर विकास नहीं कर पाता।

मनुष्य आदि में अर्थात् बाल्यावस्था में तो परम मुग्ध रहता है, परन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों वह विकसित होता जाता है। यहाँ तक कि अपने बल-बुद्धि, पूर्ण प्रयत्न, सदुत्साह तथा कठिन प्रयास से महान् पण्डित, उच्च-स्तरीय वैज्ञानिक, धर्म-विज्ञ, दर्शनीय देवता-स्वरूप बन सकता है; इतिहास इस बात का पूर्ण प्रमाण है।

इसके विपरीत पशु-पक्षी तथा कीट-पतंगादि जैसे शैशवावस्था में कार्य करते हैं, वैसे ही कर्म जीवन-पर्यन्त करते रहते हैं। उनमें न तो वे अभिवृद्धि कर सकते हैं और न ही उन्हें क्रमशः संशोधित रूप में सम्पादित कर सकते हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। जब वह सांसारिक वस्तुओं में अच्छा आनन्द पाता है, तब वह इससे अधिक आनन्द-प्राप्ति के अन्वेषण में अग्रसर होता है। वह सोचने लगता है कि इस सांसारिक आनन्द का उद्गम-स्थान कहाँ है ? वह कैसे प्राप्त हो सकता है ? वहाँ क्या इससे भी विशेष आनन्द होगा ? तब वह बाह्य आनन्द अर्थात् सांसारिक आनन्द को त्याग कर अन्तरा-नन्द में लवलीन होने लगता है। धीरे-धीरे वह आगे बढ़ता जाता है, तब एक दिन वह आता है, जिसमें उसे आनन्द का स्रोत ही नहीं बल्कि समुद्र तक प्राप्त हो जाता है। उसे पाकर वह लोकोत्तर असीम आनन्द का अनुभव एवं विकास करके अति पुलकित तथा परम प्रसन्न हो जाता है।

## अन्तरानन्द-प्राप्ति के लिये सदाचार की आवश्यकता

अन्तरानन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदाचार का पालन करना अति आवश्यक है। सदाचार से अनभिज्ञ रहने पर मनुष्य का मस्तिष्क उत्तरोत्तर विकसित नहीं हो पाता। जीवन-काल एक ओर सदा क्षीण होता रहता है, तो दूसरी ओर सदाचार की अनभिज्ञता से रोग आदि चोट करते रहते हैं। कितने मनुष्य जन्म लेते हैं, सङ्कटों में पड़ते हैं, दुःख और कठिनाइयाँ झेलते हैं और अन्त में अपनी भलाई के मार्ग से अपरिचित रहते हुए मर जाते हैं। भ्रम की मदिरा पीने से वह जन्म भर उन्मत्त के समान रहते हैं और अन्त तक उन्हें अपनी भलाई का ज्ञान नहीं हो पाता।

सदाचार से अपनी भलाई का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है, साथ ही कर्म-क्षेत्र में पूर्ण सिद्धि भी प्राप्त होती है। जीवन सफल हो जाता है। इह लोक तथा पर-लोक दोनों फल-प्रद हो जाते हैं। इस प्रकार मानव मस्तिष्क के उत्तरोत्तर विकास का मूल सदाचार ही है।

## हिन्दू-धर्म और सदाचार

हिन्दू-धर्म में सदाचार का उल्लेख अत्यन्त प्रमुखता के साथ हुआ है। मानव-जीवन के छोटे-बड़े सभी कर्मों का विवेचन सदाचार की कसौटी पर हुआ है। यही कारण है कि हिन्दू-धर्म आज भी पूर्ववत् सिद्धि-प्रद एवं जीवन्त बना हुआ है।

उदाहरणार्थ हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत सदाचार के रूप में पहला कृत्य ब्राह्म-मुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय से एक घण्टा पहले सोकर उठ बैठना है। उस समय सावधान होकर शुभ विचारों का स्मरण किया जाता है। फिर पृथ्वी को नमस्कार कर शैय्या से उठकर हाथ-मुँह धोकर शौच-क्रिया के लिए बाहर जाना होता है।

मल-मूत्र त्याग करते समय बोला नहीं जाता। अग्नि, जलाशय, सूर्य और पूजनीय लोगों के सामने मल-मूत्र का त्याग नहीं किया जाता। रास्ते में, भस्म पर, गोचारण भूमि में, जोती हुई भूमि में, चिता-स्थान में, पर्वत पर, जीर्ण देव-मन्दिर में, चलते-चलते, खड़े-खड़े मल-मूत्र का त्याग नहीं किया जाता। शौच-क्रिया के बाद दातून से दाँतों और जीभ को स्वच्छ किया जाता है। उसके बाद स्नान किया जाता है। स्नान मौन रहकर किया जाता है। स्नान के बाद भस्म-चन्दन आदि लगाकर माता, पिता, गुरु तथा घर में जो कुल-देवता होते हैं, उन्हें विधिवत् प्रणाम किया जाता है। फिर प्रातः-सन्ध्या की जाती है।

मध्याह्न में भोजन होता है। भोजन के पहले और बाद में बलि, अतिथि-सेवा आदि कर्म किए जाते हैं। हिन्दुओं के लिए भोजन यज्ञ-मय है। उसमें पवित्रता का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। चाहे जिस स्थान में तथा खड़े-खड़े भोजन नहीं किया जाता। सन्ध्या-समय सायं-सन्ध्या करने के पश्चात्, रात्रि के पहले प्रहर के भीतर भोजन करके शयन की तैयारी करते हैं। शयन करने से पूर्व इष्ट-देवता से क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

हिन्दू-धर्म के अनुसार इस प्रकार सदाचार का सदा सेवन करने से मनुष्य आयु एवं अक्षय सौभाग्य प्राप्त करता है। सदाचार में मन लगाने से कभी कोई अनिष्ट नहीं होता।

### उत्कृष्ट सदाचार के रूप में हिन्दुओं की पूजा का महत्त्व

सदाचार के उपर्युक्त महत्त्व को भली-भाँति समझ कर मानव समाज के विकास के लिए हिन्दू ऋषि-मुनियों ने इसे क्रमशः उत्कृष्ट रूप दिया। हिन्दुओं की 'पूजा' उपर्युक्त सदाचारों का ही एक उत्कृष्ट स्वरूप है। हिन्दुओं की 'पूजा' के द्वारा एक ओर सदाचार का सदा सेवन होता है, तो दूसरी ओर 'आत्म-ज्ञान' की प्राप्ति होती है, जिसके फल-स्वरूप मनुष्य विकास की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करता है।

'सर्वोच्च स्थिति' प्राप्त करने के उद्देश्य से, हिन्दू-धर्म का यह स्पष्ट निर्देश है कि देवता की 'नित्य-पूजा' स्वयं देवता बनकर करे। बिना देवता बने, देवता की पूजा करने से वह 'पूजा' निष्फल होती है। दूसरे शब्दों में सर्वोच्च स्थिति (देवत्व) की प्राप्ति नहीं होती।

हिन्दुओं की 'पूजा' केवल इसी निर्देश-मात्र तक सीमित नहीं है। उसमें—१ आत्म-शुद्धि, २ स्थान-शुद्धि, ३ मन्त्र-शुद्धि, ४ द्रव्य-शुद्धि और ५ देव-शुद्धि नामक पञ्च-शुद्धियाँ हैं, जो क्रिया-मय हैं और निश्चित रूप से सर्वोच्च स्थिति तक पहुँचानेवाली हैं।

# नाद-साधना

**श्री शिवचरणलाल चौरसिया, नागपुर (महाराष्ट्र)**

ईश्वर और जीव को एक शृङ्खला में बाँधने का कार्य 'शब्द' द्वारा होता है। सृष्टि का आरम्भ भी शब्द से हुआ है। पञ्च-तत्त्वों में सर्व-प्रथम आकाश का निर्माण हुआ है। आकाश की तन्मात्रा 'शब्द' है। अन्य समस्त पदार्थों की भाँति शब्द के दो प्रकार हैं—(१) सूक्ष्म और (२) स्थूल। 'अनाहत-नाद' सूक्ष्म है तथा 'आहत-नाद' स्थूल।

अनाहत-नाद-रूपी सूक्ष्म शब्द-प्रवाह हमारे लिए सदैव प्रवाहित रहता है। यह प्रवाह हमारी आत्मा से टकराता है। परन्तु हममें से बिरले ही लोग ऐसे हैं, जो उसे सुनने के इच्छुक होते हैं। यदि उस शब्द-प्रवाह को सुना या समझा जा सके, तो निस्सन्देह जीवनोद्देश्य की ओर द्रुत-गति से बढ़ सकते हैं।

हमारा अन्तःकरण रेडियो-जैसा, 'महा-काश' से शब्द प्राप्त करने का यन्त्र है। इसकी ओर यदि अभिमुख हुआ जाय तथा अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाकर, आत्मा में प्रस्फुटित होनेवाली दिव्य-विचार-लहरियों को चुना जाय, तो सूक्ष्म शब्द-प्रवाह-रूपी 'ईश्वरीय-वाणी' हमें प्रत्यक्ष सुनाई पड़ सकती है। इसी को 'आकाश-वाणी' कहते हैं। हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं ? तथा हमारे लिए क्या अनुचित है ? इसका प्रत्यक्ष संदेश इससे प्राप्त होता है। अन्तःकरण की पुकार, आत्मा का आदेश, ईश्वरीय संदेश, आकाश-वाणी, तत्त्व-ज्ञान इत्यादि नामों से इसी शब्द-प्रवाह को पुकारते हैं।

आत्मा को शुद्ध और निर्मल करके, जो साधक 'दिव्य संदेश' को सुनने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं, वे 'आत्म-दर्शी' एवं 'तत्व-ज्ञानी' कहलाते हैं। ईश्वर उनके बिलकुल समीप आ जाता है। वे ईश्वर की बातें सुनते हैं और अपनी बातें उससे कहते हैं। इस दिव्य मिलन के लिए हाड़-मांस के स्थूल नेत्र या कानों का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्मा में स्थित अन्तःकरण, अपनी दिव्य इन्द्रियों की सहायता से इस कार्य को सहजता से पूर्ण कर लेता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब तक आत्मा में कषाय अर्थात् काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर तथा कलुष बने रहते हैं, तब तक अत्यन्त सूक्ष्म 'ब्रह्म-शब्द' तथा 'दिव्य-विचार' धुंधले रूप में सुनाई पड़ते हैं। जैसे-जैसे आन्तरिक पवित्रता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे 'दिव्य-संदेश' स्पष्ट रूप से सामने आने लगते हैं। बुरा कार्य करते समय, अन्तरात्मा में भय, घृणा, लज्जा, संकोच होना तथा उत्तम और सत्कर्म करते समय, आत्म-संतोष, प्रसन्नता, उत्साह इत्यादि होना इसी स्थिति का बोधक है।

इस प्रकार प्रकृति के अन्तराल में एक ध्वनि प्रतिक्षण उठती रहती है, जिसकी प्रेरणा से आघातों के द्वारा परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है और सृष्टि के समस्त कार्य होने लगते हैं। प्रारम्भिक सूक्ष्म 'ब्रह्म-शब्द' स्वयं ॐ है। ॐ की ध्वनि जैसे-जैसे अन्तः-तत्वों के क्षेत्रों से होती हुई अग्रसर होती है, वैसे-वैसे उसकी ध्वनि में अन्तर आने लगता है। जिस प्रकार बाँसुरी के छिद्र में हवा फूँकने पर उसमें एक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है और तदनन्तर बाँसुरी के अन्य छिद्रों में से, जिस छिद्र में से जितनी हवा का प्रवेश होता है, उसी के अनुसार भिन्न-भिन्न स्वरों की ध्वनियाँ ध्वनित होती हैं, ठीक उसी प्रकार 'ॐ' ध्वनि भी विभिन्न तत्त्वों के सम्पर्क में आकर विविध प्रकार की स्वर-लहरियों में परिणत हो जाती है। इन स्वर-लहरियों का सुनना ही 'नाद-साधना' कहलाती है।

'पञ्च-तत्त्वों' से प्रतिध्वनित हुई 'ॐ' 'स्वर-लहरियों' को सुनने की 'नाद-साधना' कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। इस दिव्य 'नाद-सङ्गीत' के सुनने में इतना आनन्द आता है कि उस आनन्द की तुलना में किसी वाद्य की 'मधुर-ध्वनि' अथवा गायन की ध्वनि नीरस प्रतीत होती है। इस नाद-श्रवण से मानसिक तन्तुओं का प्रस्फुटन होता है। मस्तिष्क में नैसर्गिक आनन्द की स्फुरणा होती है, जिससे अनेक गुप्त मानसिक शक्तियाँ विकसित होने लगती हैं।

'नाद' पर ध्यान केन्द्रित होते ही, मन की बिखरी हुई अन्य शक्तियाँ एकत्रित हो जाती हैं। मन को वश में करने तथा पूर्व-नियोजित कार्य पर उसे लगा देना सहज हो जाता है। इस सफलता का महत्व केवल 'अध्यात्म-मार्ग' का जिज्ञासु हो जानता है। जिस प्रकार आतिशी काँच में सूर्य-किरणें एकत्रित होने से अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार 'नाद-साधना' से शरीर में बिखरी हुई अनन्त दिव्य-शक्तियाँ एकत्र होकर महा-शक्ति उत्पन्न होती है।

'नाद' की स्वर-लहरियों को पकड़ते-पकड़ते, साधक ॐ रूपी रस्सी के सहारे, परम तत्व तक पहुँचने में सफल हो जाता है। ब्रह्म-लोक ही आत्मा का अभीष्ट स्थान है। ब्रह्म-लोक की प्राप्ति को ही मुक्ति, निर्वाण, परम-पद इत्यादि कहते हैं। 'नाद' की सहायता से साधक अपने मन को ब्रह्म में लय करता हुआ साधना की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच जाता है और अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

नादाभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व साधक एकान्त और नीरव स्थान को चुने। तेज प्रकाश इस अभ्यास में बाधक होता है, इसलिए यह साधना किसी अँधेरी कोठरी में करना आवश्यक है। साधना के लिए एक प्रहर रात्रि समाप्त हो जाने के बाद सूर्योदय से पूर्व अरुण-काल तक का समय प्रशस्त है। इस बात पर अधिक ध्यान रखना चाहिए कि जो समय एक बार निश्चित करे, उसी नियमित समय पर नादाभ्यास करे।

निश्चित समय पर बैठ जाने के उपरान्त, साधक अपने मन में ऐसी भावना करे कि उसका शरीर केवल रुई का ढेर है और शरीर को पूर्ण-रूप से ढीला छोड़ दे। शरीर को ढीला छोड़ देने पर, वह संतुलित न रहकर इधर-उधर झुकने लगेगा, इसलिए दीवार या मसनद का सहारा लेकर अपने स्थान पर बना रहे। स्वच्छ रुई की दो गोलियाँ बनाकर अपने दोनों कानों के छिद्रों को ठीक तरह से बन्द कर ले, जिससे बाहर की आवाज उसकी साधना में बाधक न बने। रुई की गोलियों की व्यवस्था न हो, तो अपने हाथ की अँगुलियों से कान के दोनों छिद्र बन्द कर ले। इतना करने पर भी यदि बाहर की आवाज सुनाई पड़ती हो, तो अपना ध्यान उस ओर से हटाकर साधना पर केन्द्रित कर दे और मूर्धा-स्थान में होनेवाले शब्दों की प्रतिध्वनि को सुनने का प्रयत्न करे।

साधना प्रारम्भ करने के उपरान्त कुछ दिन तक कुछ भी सुनाई न पड़े, तो साधक निराश न हो और अपने प्रयत्नों को नियमित रूप से करता रहे। कुछ दिन के प्रयत्न के उपरान्त जैसे-जैसे सूक्ष्म कर्णेन्द्रियाँ निर्मल होती जायेंगी, वैसे-वैसे उसे 'नाद' शब्द की स्पष्टता अनुभव होने लगेगी। साधना के प्रारम्भिक दौर में कई प्रकार शब्द सुनाई देते हैं। साधक के शरीर में जो रक्त प्रवाहित होता है, मन में जो चञ्चलता की लहरें उठती हैं, वे मानस तन्तुओं से टकराती हैं। उस टकराव से ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। कुछ दिन के नियमित अभ्यास से ये समस्त शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने लगते हैं। इन स्पष्ट शब्दों को सुनने से, साधक की सूक्ष्म इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं और उनमें गुप्त शक्तियों को ग्रहण करने की क्षमता आ जाती है। साधक जब 'नाद-श्रवण' करने योग्य हो जाता है, तब उसे बाँसुरी जैसी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगती हैं। यह मधुर ध्वनि सूक्ष्म लोक में होनेवाली क्रियाओं की परिचायक है।

जिस प्रकार अनेक 'आकाश-वाणी केन्द्रों' से एक ही समय में अनेक कार्य-क्रम प्रसारित होते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकार के 'अनाहत शब्द' भी प्रस्फुटित होते रहते हैं। उनके कारण, उपयोग और रहस्य अनेक प्रकार के हैं। अनेक प्रकार के 'अनाहत शब्दों' को सुनना, हर साधक के लिए सम्भव नहीं है। अनाहत शब्दों में 'ॐ' ध्वनि आत्म-कल्याण-कारक विभिन्न सिद्धियों की जन्म-दात्री है।

अन्त में 'नाद-साधना' के सम्बन्ध में यह कह देना उचित है कि उपर्युक्त साधना-विधि संक्षिप्त रूप में लिखी गई है। इस 'नाद-योग' को सभी साधक, एक विधि से नहीं साध सकते हैं। उष्ण प्रकृतिवालों को अस्थिर, चञ्चल और अनेक ध्वनियों का मिश्रित नाद सुनाई पड़ता है। ऐसे साधकों को उष्णता शान्त करने का उपाय करना परम आवश्यक है। उसी प्रकार, जिन साधकों की प्रकृति शीत है, उन्हें वही 'आहत नाद' बहुत ही मन्द और रुक-रुक कर सुनाई पड़ता है। ऐसे शीत प्रकृति के साधकों को शीत प्रकृति से बचने का प्रयत्न करना परम आवश्यक है। जैसे शीत और उष्ण प्रकृति के दो भेद ऊपर बताये गये हैं, उसी प्रकार अनेक भेद, उप-भेद भी हैं। इसलिए प्रत्येक साधक को अपनी शारीरिक प्रकृति के अनुसार इसे अपना कर साधना करनी चाहिए।

'दूर-दर्शन' के छाया-पट पर

## 'चण्डी के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

१६ दिसम्बर, १६८८ को 'दूर-दर्शन' दिल्ली द्वारा 'पत्रिका' कार्य-कम के अन्तर्गत 'चण्डी' पत्रिका के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल के साहित्यिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालनेवाला एक अनूठा वृत्त-चित्र प्रदर्शित किया गया। इस वृत्त-चित्र को जिसने भी देखा, वही मुग्ध हो उठा।

प्रस्तुत-कर्ता, लखनऊ दूरदर्शन के श्री पं० आलोक शुक्ल ने अपनी निजी अनुभूति के आधार पर तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी-सङ्गम में अदृश्य रूप से विद्यमान सरस्वती को राष्ट्र-भाषा हिन्दी को जन्म देनेवाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के रूप में प्रयाग में ही अवस्थित इण्डियन प्रेस से प्रत्यक्ष आविर्भूत होते चित्रित किया और उसी 'सरस्वती' के सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल का खपरैलों वाला वह साधारण-सा आवास दिखाया, जहाँ रहकर उन्होंने दीर्घ-कालीन सारस्वत साधना ही नहीं की, अपितु सन् १६४२ के भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने के लिए उसके पूर्व ही अप्रैल १६४२ में शाक्त-धर्म की एकमात्र पत्रिका 'चण्डी' का सूत्रपात तो किया ही, साथ ही १६७२ तक अपने अन्तिम श्वास-पर्यन्त वे उसका सम्पादन-निर्देशन भी करते रहे।

शुक्ल जी के 'सरस्वती'-सम्पादन के साक्षी वरिष्ठ साहित्यकार एवं शुक्ल जी के घनिष्ठ सहयोगी वयोवृद्ध ८५ वर्षीय ठाकुर श्रीनाथ सिंह के मुख से शुक्ल जी की सम्पादकीय गरिमा का वर्णन कराना वृत्त-चित्र के प्रस्तुत-कर्ता पं० आलोक शुक्ल की सूझ-बूझ का परिचायक रहा। शुक्ल जी 'सरस्वती' के द्वारा राष्ट्र-भाषा के कार्य के प्रति कितने निष्ठावान् थे, इसकी पुष्टि उन्हीं के दूसरे घनिष्ठ सहयोगी ८५ वर्षीय वयोवृद्ध साहित्यकार पं० ठाकुरदत्त मिश्र के मुख से कराकर एक और वरिष्ठ साहित्यकार ६५ वर्षीय वयोवृद्ध श्री ओङ्कार शरद द्वारा यह कहा जाना कि उनके जैसे कितने ही हिन्दी-लेखक शुक्ल जी की कृपा से आज अपनी आजीविका चला रहे हैं, एक अभूतपूर्व अभिव्यक्ति रही, जिससे शुक्ल जी के 'गुरुत्व' की छाप दर्शकों पर पड़ी। तीन बूढ़े और प्रौढ़ मनीषियों के साक्ष्य के सिवा तरुण डा० मुश्ताक अली के मुख से शुक्ल जी के 'सरस्वती'-सम्पादन-सम्बन्धी उनके शोधात्मक विवरण को प्रस्तुत कर वृत्त-चित्र ने शुक्ल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व को दर्शकों के समक्ष मानों प्रत्यक्ष ही कर दिया।

ठीक इसी समय प्रयाग उच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश एवं शुक्ल जी के अनन्य शिष्य ८० वर्षीय वयोवृद्ध पण्डित शिवनाथ जी काटजू की यह उद्घोषणा सुनकर दर्शक चकित रह जाते हैं कि इस विराट् साहित्यिक व्यक्तित्व-कृतित्व से अलग शुक्ल जी का आध्यात्मिक व्यक्तित्व-कृतित्व और भी विलक्षण रहा, जिसने वह कार्य सम्पादित किया, जो स्वनाम-धन्य शिवचन्द्र विद्यारण्य के शिष्य और कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर जान वुडरफ अधूरा छोड़ गए थे अर्थात् लोक-भाषा हिन्दी द्वारा शाक्त-धर्म के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन। इस उद्घोषणा के साथ ही शुक्ल जी के पूजा-कक्ष में रखे व्याघ्रासन, महा-पात्र, रुद्राक्ष-माला आदि का दिव्य दर्शन दर्शकों को अभिभूत कर देता है। फिर 'चण्डी' पत्रिका, वाम-मार्ग, मन्त्र-सिद्धि का उपाय आदि पुस्तकों के आवरण-पृष्ठों के चित्र दिखाकर शुक्लजी के तत्सम्बन्धी कृतित्व की सुचारु रूप से पुष्टि वृत्त-चित्र द्वारा होती है।

अन्त में शुक्ल जी के एकमात्र पुत्र के मुख से उनके निःस्पृह, सादगी-पूर्ण जीवन की झाँकी दिखाकर वृत्त-चित्र शुक्ल जी के निजी आवास चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग का दर्शन कराकर पुनः त्रिवेणी सङ्गम की दिव्य छटा के अवलोकन का सौभाग्य प्रदान कर दर्शकों को यह हृदयङ्गम कराने में सफल होता है कि शुक्ल जी के साथ ही सरस्वती पुनः उस पवित्र जल-राशि में अन्तर्हिता हो जाती हैं।

'दूर-दर्शन' के इस वृत्त-चित्र का कैसा प्रभाव दर्शकों पर पड़ा, इसका अनुमान उन कुछ पत्रों से मिलता है, जो यहाँ उद्धृत हैं—

६ : दिसम्बर : : कौल-कल्पतरु' चण्डी

प० राधाचरण तिवारी, एडवोकेट, खण्डवा (म० प्र०) / ८-१२-८८

"...कल टी० वी० पर 'आप और हम' में आपका पत्र सुना और श्रद्धेय पं० देवीदत्त शुक्ल के सम्बन्ध में कुछ अंश भी देखा। मुझे भी उसका प्रसारण-दिनांक और समय ज्ञात नहीं था। यदि ज्ञात रहता, तो अवश्य देखता।...आपके पत्र के कारण अंश तो देखने को मिल गया।...."

श्री पं० जयगोपाल मिश्र 'फतेहपुरी', प्रयाग (उ० प्र०) / ११-१२-८८

"...टेलीविजन में बप्पाश्री के ऊपर वृत्त-चित्र में पुराने कटरे का घर आदि देखकर मनसा पूजा-स्थली में पहुँच गया।..."

श्री अक्षयकुमार जैन, दिल्ली / १२-१२-८८

"...दूर-दर्शन पर मैंने कार्यक्रम देखा। आचार्य द्विवेदी एवं शुक्ल को हिन्दी-पत्रकार-जगत् कभी भुला नहीं सकता।...."

श्री पं० रंगनाथ 'राकेश', वाराणसी (उ० प्र०) / १६-१२-८८

"...पूज्य बप्पा पर लखनऊ दूर-दर्शन की प्रस्तुति देखकर सात्यन्त हर्ष हुआ। ओंकार शरद, मुश्ताक अली के विचार श्रवणार्ह रहे। श्री काटजू जी ने संक्षिप्त किन्तु सार-भूत तथ्य तन्त्रात्मक आयाम में स्वगतोक्ति रूप दिया। आपका विनम्र आत्मनेपदी 'पैर दबाते-दबाते बप्पा से संस्मरण सुनना' अद्भुत रहा, अपूर्व रहा! कुल-धर्म-विहित रहा! आपकी पितृ-परायणता आपके मुखड़े पर प्रतिभासित थी।..."

श्री नर्मदाप्रसाद गुप्त, शहडोल (म० प्र०) / १६-१२-८८

"...स्व० श्री पं० देवीदत्त शुक्ल जी के बारे में उनके अनन्य शिष्य न्याय-मूर्ति पं० श्री शिवनाथ जी काटजू के श्री मुख से तथा 'कौल-कल्पतरु' सदा-शिव-स्वरूप शुक्ल जी के सम्पादकीय जीवन की कुछ झलकियाँ सोमवार सायं ७.३० बजे दिल्ली दूर-दर्शन द्वारा प्रदर्शित और श्री आलोक शुक्ल द्वारा प्रस्तुत फिल्म में देखीं। हृदय श्रद्धा से भर गया।..."

प्रो० विश्वनाथ शुक्ल, भू० पू० अध्यक्ष 'हिन्दी-विभाग,' अलीगढ़ मु० वि०, अलीगढ़ / (उ०प्र०) २२-१२-८८

"...१६-१२-८८ को 'दूर-दर्शन' पर स्व-नाम-धन्य स्व० देवीदत्त जी शुक्ल के विषय में विस्तृत प्रसारण देखा। गद्गद् हो गया। इससे सिद्ध होता है कि यदि सच्ची योग्यता और प्रतिभा होती है, आध्यात्मिक तेजोबल होता है, तो जगत् में उसका प्रकाश हुए बिना नहीं रहता। स्व० देवीदत्त जी शुक्ल ऐसी ही विभूति थे, जिनका प्रखर प्रकाश अब फैल रहा है।..."

श्री यशपाल जैन, मन्त्री, 'सस्ता साहित्य मण्डल', दिल्ली / २०-१२-८८

"...कल दिल्ली-दूरदर्शन द्वारा प्रदर्शित शुक्ल जी की फिल्म देखी। अच्छी लगी। पुरानी स्मृतियाँ सजीव हो गईं।..."

श्री धर्मेन्द्र त्यागी, महा-सचिव, 'दस्तक साहित्य परिषद्', दिल्ली / २०-१२-८८

"...परम श्रद्धेय देवीदत्त जी शुक्ल पर कार्य-क्रम देखकर मन गद्गद हो उठा। बहुत ही आनन्द आया।... लखनऊ दूर-दर्शन बधाई का पात्र है।..."

पं० राजेन्द्रकुमार अवस्थी, उदयपुर (राजस्थान) / २०-१२-८८

"...१६-१२-८८ को सायं (८.०० बजे) आरती के बाद शेष कार्य-क्रम करने जा ही रहा था कि टी० वी० की ध्वनि टकराई...'साहित्य से अधिक उनका योग तन्त्र-शास्त्र...' और अचानक लगा, कहीं पू० बप्पा के सम्बन्ध में तो प्रसारण नहीं है, आचमन कर तत्काल उठकर गया। देखा; पं० शिवनाथ काटजू विचार व्यक्त कर रहे थे। अनुमान सत्य निकला। मन में साध उठी, आपके भी दर्शन होने चाहिए और लो! इतने वर्षों बाद आपके दर्शन का सौभाग्य मिला! सौभाग्य मिला, पूजा-गृह के दर्शनों का...सङ्गम की पुनीत धारा का। धन्य भाग्य! धन्य मां की यह अहैतुकी कृपा..."

प्रो प्रेमशङ्कर सिंह 'प्राञ्जल', प्राचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, रायपुर (म० प्र०) / २६-२२-८८

"...लखनऊ से टी० वी० प्रसारण में परम पूजनीय श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय श्री पं० देवीदत्त शुक्ल जी का जन्म-शताब्दी-समारोह मेरे परिचितों ने देखा।...धन्य हैं, आपने अपने पिता के प्रति सही रूप से कर्तव्य निभाया और निभा रहे हैं।..."

डा० रामप्रसाद मिश्र, दिल्ली / २२-१२-८८

"...'जन-सत्ता' में पं० देवीदत्त शुक्ल पर लेख देखा था (सचित्र), 'दूर-दर्शन' पर कार्यक्रम आया था—तप का प्रताप है। आपकी पितृ-ऋण-पूर्ति-साधना फलवती हुई है।..."

श्री त्रिलोचन शास्त्री, अध्यक्ष 'मुक्तिबोध सृजन पीठ', सागर (म० प्र०) / २६-१२-२८

"...आदरणीय देवीदत्त शुक्ल पर दूर-दर्शन ने, अभी हाल में छोटा कार्य-क्रम दिया था। उसे देखकर हार्दिक आनन्द हुआ।..."

ज्योतिषाचार्य पं० हरदेव त्रिवेदी, सम्पादक 'ज्योतिष्मती', मथुरा (उ० प्र०) /२१-१२-८८

"...'दूर-दर्शन' पर मैं केवल रामायण-महाभारत देखता हूँ। अन्य नाटक, समाचार, प्रहसन आदि नहीं। आँख पर जोर पड़ता है। अतः कमरे में जैन मुनि बन कर बैठा रहता हूँ। परसों सोमवार रात्रि-काल ८। बजे मेरे कमरे में आकर श्री राधेश्याम जी उपाध्याय ने कहा—'फूफा जी, आज 'दूर-दर्शन पर 'सरस्वती'-सम्पादक स्व० श्री शुक्ल जी की जीवनी आ रही है। चलकर देखिये।' मैं तत्काल 'दूर-दर्शन' के कमरे में गया। उस समय 'सरस्वती' में उनके लक्ष्यों और धी-तीक्ष्णता की चर्चा हो रही थी। आपने उनके ग्रन्थ-प्रकाशन का परिचय सुन्दर रूप में दिया। बन्धुवर श्री शिवनाथ काटजू ने उनके तान्त्रिक स्वरूप और 'चण्डी' का परिचय बहुत अच्छे रूप में दिया। इसके लिए श्री काटजू साहब को मेरी ओर से बधाई देवें। कार्य-क्रम बहुत अच्छा लगा। मुझे खेद है कि मैं आरम्भ से इसे न देख-सुन पाया। यदि मुझे पहले से ज्ञान होता कि श्रद्धेय शुक्ल जी की पवित्र जीवनी को 'दूर-दर्शन' प्रसारित करेगा, तो मैं समय से 'दूर-दर्शन' पर चला जाता। अस्तु।..."

वैद्य पं० मोहनलाल उपाध्याय, मथुरा (उ० प्र०) / २५-१२-८८

"...सन् १९४६ में श्री शुक्ल जी से पत्र-व्यवहार किया था। उन्होंने सप्तशती-पाठ के सम्बन्ध में मुझे बताया था। यह एक चमत्कार ही था कि आकस्मिक बैठे-ही-बैठे टेलिविजन में पूज्य श्री शुक्ल जी का चरित आने लगा और मुझे उनके लेख की स्मृति के साथ उन महर्षि के दर्शन अकस्मात् प्राप्त हो गए। यह एक संयोग ही था और मुझे यह लगा कि यह स्वप्न है या वास्तविकता!..."

श्रीमती अन्नपूर्णा काटजू, प्रयाग (उ० प्र०) / २३-१२-८८

"...गुरु महाराज का वृत्तचित्र टी० वी० पर देखकर हृदय आनन्द से भर गया।...उन्होंने ही आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर कराया है।..."

ठाकुर श्रीनाथ सिंह, प्रयाग (उ० प्र०) / २६-१२-८८

"...'दूर-दर्शन' पर सङ्गम और 'सरस्वती' के बारे में देखा। काफी अच्छा रहा।..."

# भैरवी-चक्र और तत्त्व-चक्र

**प्रो० श्रीरञ्जन सूरिदेव, सम्पादक 'परिषद् पत्रिका'**

**बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना–४**

तन्त्रागमोक्त 'भैरवी-चक्र' और 'तत्त्व-चक्र' सर्व-वर्ण और सर्व-धर्म-समन्वय की प्रतीक संस्था है। 'महा-निर्वाण तन्त्र' में, जो सर्व-तन्त्रों में उत्तमोत्तम माना गया है, उल्लेख है कि जो उत्तम साधक हैं, उन्हें विशेष पूजा के उद्देश्य से 'भैरवी-चक्र' और 'तत्त्व-चक्र' का अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठान से साधकों का मङ्गल होता है। इन दोनों चक्रों में भगवती की आराधना करने से साधकों को शीघ्रतापूर्वक अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँ दोनों चक्रों का संक्षिप्त स्वरूप निरूपित है।

## भैरवी-चक्र और उसकी विधि

चक्र-साधकों में प्रमुख व्यक्ति को 'कुलाचार्य' या 'कुल-साधक' की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। कुलाचार्य के लिए आदेश है कि वह शास्त्रोक्त विधि से शुद्ध होकर रमणीय स्थान में उत्तम आसन बिछाकर **'क्लीं फट्'** इस मन्त्र से उस आसन की शुद्धि करे, तत्पश्चात् उस पर शान्त चित्त से बैठे। तदनन्तर, ज्ञानवान् कुल-साधक सिन्दूर या लाल चन्दन अथवा केवल जल से त्रिकोण-गर्भित चतुष्कोण मण्डल की रचना करे। पुनः उस मण्डल में घट की स्थापना करे। घट में दही, अक्षत और सिन्दूर लगाकर उस पर पल्लव और फल रखे। उसके बाद घट को सुगन्धित जल से परिपूर्ण करके प्रणव-पाठ के साथ उसे धूप और दीप दिखाये। फिर, गन्ध-पुष्प से घट की अर्चना करके उसमें इष्ट-देवता का ध्यान और आवाहन-पूर्वक उसकी पूजा करे। पूजा के क्रम में, अपनी अभिलाषा के अनुसार, तत्त्व (द्रव्य=सुरा, मांस आदि) का सम्मुख स्थापन करे और अस्त्र-मन्त्र **'फट्'** शब्द के उच्चारण के साथ घट को प्रोक्षित कर उसे दिव्य दृष्टि से देखे, फिर घट के मध्य अर्थात् उसके मुख पर सुरा-पात्र रखे और उसमें गन्ध-पुष्प डालकर देवी आनन्द-भैरवी और देव आनन्द-भैरव का ध्यान करे। दोनों—देवी और देव का ध्यान-स्वरूप तन्त्र में इस प्रकार बताया गया है :

"आनन्द-भैरवी नव-यौवन से सम्पन्ना हैं। उनका शरीर तरुण अरुण के समान कान्तिमान् है और उनका मुख-कमल मनोहर हास्यामृत की आभा से विकसित है। जो नृत्य-गीत में सदा आनन्द-आमोद बिखेरती हैं, जो अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभिता हैं, जो विचित्र परिधान धारण किये हुई हैं और जो एक हाथ से वर तथा एक हाथ से अभय-दान दे रही हैं, उन आनन्द-भैरवी का मैं ध्यान करता हूँ।"

आनन्द-भैरवी के ध्यान के बाद आनन्द-भैरव का ध्यान इस प्रकार कहा गया है :

"जो कपूर के पुञ्ज के समान गौर-वर्ण हैं, जिनकी आँखें कमल-दल के समान आयत हैं, जिनका शरीर दिव्य वसन और आभूषणों से सुशोभित है, जो बाँयें हाथ में मद्य-पात्र और दाँयें हाथ में शुद्धि, अर्थात् मांस, मत्स्य और मुद्रा धारण किये हुए हैं, ऐसे आनन्द-भैरव का मैं स्मरण करता हूँ।"

इस प्रकार ध्यान करके कुल-साधक सुरा-पात्र में भैरव और भैरवी की पारस्परिक सामरस्य-भावना की स्थापना करे और **'ॐ आनन्द-भैरवाय नमः, ॐ आनन्द-भैरव्यै नमः'** के उच्चारण के साथ गन्ध-पुष्प द्वारा दोनों के पूजन-पूर्वक सुरा का शोधन करे। सुरा का यह शोधन-कार्य इस विधि के प्रमुख कर्त्ता ही, जिन्हें 'कुलाचार्य' 'कुल-पूजक' या 'कुल-साधक' कहा जाता है, सम्पन्न करते हैं। कुल-पूजक को **'आं ह्रीं क्रीं स्वाहा'** इस मन्त्र के एक सौ आठ बार जप द्वारा सुरा का शोधन करना चाहिये।

तन्त्रकारों का मत है कि कलियुग के प्रभाव-वश गृहस्थ जनों के लिये सुरा और सुन्दरी में आध्यात्मिक शक्ति-भावना का विनिवेश सम्भव नहीं हो पायगा और वे मुख्यतः शरीर के प्रति ही सहज आग्रह-शील रहेंगे, इसलिये आद्य-तत्त्व यानी सुरा की जगह दूध, चीनी और शहद, इन तीनों द्रव्यों—'मधुर-त्रय' को ही देवता के निकट निवेदित करने में उनकी अधिक अभिरुचि होगी। कलि-जन्मा मनुष्य अधिकतर काम-विभ्रान्त-चित्त होंगे, इसलिये वे अपनी सामान्य बुद्धि-वश स्त्री को शक्ति-रूप में सोचने में असमर्थ होंगे। और, चूँकि वे कामोद्रेक-वश देवी की सर्वाङ्ग-पूजा में विचलित और विफल हो जायेंगे, इसलिये कलियुग में देवी के केवल चरणों का ध्यान और उनके मन्त्र का जप ही विहित माना गया है।

'भैरवी-चक्र' में अवस्थित कुल-पूजक का कर्त्तव्य है कि वह मांस, मदिरा आदि यथा-प्रस्तुत द्रव्यों में प्रत्येक को **'आं ह्रीं क्रीं स्वाहा'** मन्त्र से अभिमन्त्रित करे, फिर दोनों नेत्र मूँदकर सभी तत्त्वों को ब्रह्म-भावना से भावित करके काली के लिये निवेदित करे, तदनन्तर उनका भोजन और पान करे।

तन्त्र-ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख है कि सुरा द्रव्य-मयी स्वयं भगवती तारा हैं। इससे प्राणियों का निस्तार होता है। यह भोग और मोक्ष का कारण है। यह रोगों का नाश और विपत्तियों से उद्धार करनेवाली होती है। जो मनुष्य समीचीन विधि-विधान के साथ समाहित-चित्त से मदिरा पीते हैं, वे निस्सन्देह मर्त्य-वासी देवता होते हैं। पर, जो विधि-विधान के बिना वारुणी देवी का सेवन करता है, उसकी बुद्धि, आयु, यश और धन—सबका वह नाश कर देती है। कुल-साधक यदि अति-पान के दोष से दूषित और अमर्यादित आचरण करनेवाला होता है, तो वह कुल-धर्म से च्युत हो जाता है और पशु में उसकी गिनती होती है। ऐसे साधक पुरुष राजा या चक्रेश्वर (कुलाचार्य) द्वारा दण्डनीय होते हैं।

इस प्रकार पान और भोजन-विधि को बतलाकर शिव ने पार्वती से कहा है कि 'हे भद्रे! यही 'भैरवी-चक्र' है, जो सार का भी सार और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ-तर है। सभी तन्त्रों में इसे गोपनीय और अप्रकाश्य माना गया है, जिसका प्रकाशन मैं तुम्हारे समक्ष कर रहा हूँ। इस भैरवी-चक्र की साधना का अधिकार विवाहित स्त्री-पुरुषों को ही है। विवाह के बिना शक्ति का सेवन करनेवाला पर-स्त्री-गमन के पाप से लिप्त होता है। पुनः साधना-सहायिका विवाहिता स्त्री को मद्य-पान कराना भी निषिद्ध है। जो साधक ऐसा करता है, वह प्रायश्चित्त का भागी होता है।'

ज्ञातव्य है, पर-वर्त्ती काल में भ्रष्ट वामाचारियों ने 'पञ्च-मकार' के सेवन में स्वच्छन्दता या उन्मुक्त यौनाचारिता को अपनाकर भैरवी-चक्र की सात्विक साधना के महान् उद्देश्य को भ्रष्ट और दूषित कर दिया।

तन्त्रकार कहते हैं कि 'भैरवी-चक्र' में अवस्थित सभी वर्णों के लोग 'वीर-द्विजोत्तम' होते हैं। जब वे 'भैरवी-चक्र' से बाहर हो जाते हैं, तभी पुनः अलग-अलग वर्ण के माने जाते हैं। 'भैरवी-चक्र' में जाति या वर्ण का विचार नहीं होता, न ही जूठन आदि का विचार होता है। जितने साधक चक्रस्थ होते हैं, उन्हें यही समझना चाहिये कि इस चक्र के सभी व्यक्ति 'वीर' हैं और सब-के-सब हमारे अपने ही प्रति-रूप हैं, दूसरे नहीं हैं।

जगन्नाथपुरी में भी, वहाँ उपस्थित भक्त ('अटका' या 'महा-प्रसाद') ग्रहण करने के लिये एक साथ पंक्ति-बद्ध बैठते हैं और उनके लिये जूठन का भेद-भाव किये बिना ही प्रसाद का परिवेषण किया जाता है। कहा जाता है कि पुरी का पीठ 'भैरवी-चक्र' में अवस्थित है।

'महा-निर्वाण-तन्त्र' के अनुसार 'भैरवी-चक्र' में देश-काल का नियम नहीं है, पात्र-अपात्र का भी विचार नहीं होता। जो पुरुष चक्र के योग्य जो कोई भी वस्तु, सहभोज के लिये ले आता है, उसका आदर-पूर्वक व्यवहार चक्र में किया जाता है। म्लेच्छ, चाण्डाल, अन्त्यज, वर्णसङ्कर आदि के हाथों में लाया गया पक्व या अपक्व कोई भी द्रव्य चक्र के भीतर आते ही पवित्र हो जाता है।

'भैरवी-चक्र' जब प्रारम्भ होता है, तब चक्रस्थ वीरों के ब्रह्म-तेज से भयाकुल होकर सभी प्रकार के विघ्न भाग जाते हैं। पिशाच, गुह्यक, यक्ष और वेताल के अतिरिक्त समस्त क्रूर जातियाँ 'भैरवी-चक्र' की बात सुनते ही डरकर वहाँ से

भाग जाती हैं । जहाँ 'भैरवी-चक्र' का अनुष्ठान होता है, वहाँ समस्त महा-तीर्थ उपस्थित होते हैं और देव-राज इन्द्र के साथ सभी देवता भी आदर-पूर्वक वहाँ आ विराजते हैं। चक्र में स्थित सभी साधक शिव-स्वरूप हो जाते हैं और उनके दर्शन से सभी पाप दूर हो जाते हैं ।

चक्र में स्थित साधकों के लिये यथा-स्वीकृत अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होता है। जैसे, चक्राधिष्ठित साधकों को व्यर्थ बकवास नहीं करना चाहिये, न ही चञ्चलता प्रकट करनी चाहिये। वाचालता, थूक फेंकना, अधोवायु का त्याग आदि कर्म भी चक्रस्थ साधकों के लिये वर्जित हैं। जो क्रूर, खल, पाशविक वृत्ति से युक्त, पापात्मा, नास्तिक, कुल-दूषक या कुल-शास्त्र के निन्दक हैं, उन्हें चक्र के बाहर निकाल देना चाहिये। चक्र में जो कोई इस प्रकार के 'पशु' (असभ्य आचरणवाले) को ले आता है, वह नरक-गामी होता है ।

'कुल-धर्म' के आश्रित चक्रस्थ मनुष्य ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य हों या शूद्र या सामान्य (वर्ण-सङ्कर) जाति के हों, सभी देव-समान पूज्य होते हैं। जो कोई जात्यभिमान-वश चक्र में जाति-भेद का विचार करता है, वह वेदान्त का पार-दर्शी होते हुये भी घोर नरक का भागी होता है। चक्र में शिव का शासन काम करता है। इसलिये उसमें सभी साधकों को शैवाचार के अनुसार चलना चाहिये ।

तान्त्रिक मार्ग में इस बात की ओर संकेत है कि सैकड़ों पुरश्चरण करने और शव-मुण्ड या चिता के आसन पर बैठकर जप करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे ज्ञानी पुरुष केवल एक बार चक्र में बैठकर जप करने से पा लेता है। छः महीनों तक 'भैरवी-चक्र' का सेवन करनेवाला राजा होता है, एक वर्ष के चक्रानुष्ठान से मृत्युञ्जयी होता है और नित्य अनुष्ठान करनेवाला महा-निर्वाण प्राप्त करता है ।

## तत्त्व-चक्र और उसकी विधि

'तत्त्व-चक्र' 'भैरवी-चक्र' से भी श्रेष्ठ होता है, इसलिये इसे 'चक्र-राज' या 'दिव्य-चक्र' कहा गया है। इस चक्र की साधना में केवल ब्रह्मज्ञ साधक को ही प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त है। ब्रह्मज्ञ साधक वे हैं, जो पर-ब्रह्म की उपासना करते हैं, ब्रह्म-ज्ञान में तत्पर रहते हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है और जो सभी प्राणियों के हित-साधन में रत और शान्त हैं। इसके साथ ही जो निर्विकार, निस्संशय, दया-शील, दृढ़-व्रत, सत्य-सङ्कल्प और ब्रह्मोपासक हैं, वे ही 'तत्त्व-चक्र' के अधिकारी हैं। 'तत्त्व-चक्र' में घट की स्थापना नहीं होती, पूजा की बहुलता या आडम्बर भी नहीं है। इसमें सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म की भावना के साथ ही उसकी पूजा की जाती है। ब्रह्म-मन्त्र का उपासक ब्रह्म-निष्ठ पुरुष ही 'चक्रेश्वर' बनता है और यही चक्रेश्वर 'तत्त्व-चक्र' का अनुष्ठाता होता है ।

उत्तम, साफ-सुथरा, निर्मल और रमणीय स्थान ही 'तत्त्व-चक्र' के साधकों के लिये सुखावह होता है। वैसे ही स्थान में चित्र-विचित्र आसन बिछाकर चक्रेश्वर को अपने साधकों के साथ बैठना चाहिये और सभी तत्त्वों को मँगाकर सामने रखना चाहिये। तदनन्तर, चक्रेश्वर सभी तत्त्वों को 'ॐ हं सः' मन्त्र के एक सौ बार जप की भावना द्वारा संशोधित करे। फिर, निम्नांकित मन्त्र (महा-निर्वाण तन्त्र, उल्लास ८, श्लोक २४) को सात बार या तीन बार पढ़े—

**ब्रह्मार्पणं ब्रह्म-हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म-कर्म-समाधिना ।।**

अर्थात्, जिसके द्वारा अर्पण करता हूँ, वह ब्रह्म है; जिस अग्नि में अर्पण किया जाता है, वह भी ब्रह्म है। अर्पित हव्य-सामग्री भी ब्रह्म ही है। इस प्रकार ब्रह्म-मय कर्म की समाधि से साधक ब्रह्म में ही लय हो जाता है ।

उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के बाद 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म' मन्त्र से सब तत्त्वों को ब्रह्म के लिये समर्पित करे। तदनन्तर, ब्रह्म-ज्ञानी साधकों के साथ मिलकर भोजन और पान करे। इस 'तत्त्व-चक्र' या 'ब्रह्म-चक्र' में जाति-भेद और पात्र-अपात्र का विचार नहीं होता, न ही इसमें देश-काल का नियम है। प्रमाद-वश जो मूढ़ पुरुष इस 'दिव्य-चक्र' में जाति-भेद या कुल-भेद का विचार करता है, वह अधम गति को प्राप्त होता है। अतएव, जो ब्रह्मज्ञ श्रेष्ठ साधक हैं, उनके लिये अपेक्षित है कि वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के निमित्त प्रयत्न-पूर्वक 'तत्त्व-चक्र' का अनुष्ठान करें ।

इस प्रकार, 'महा-निर्वाणतन्त्र' के मूल पाठ्य में वर्णित विवरण के अनुसार, यह धारणा सहज ही बनती है कि तन्त्र-मार्ग में प्रवेश के लिये जाति-भिन्नता या वर्ण-भेद को महत्त्व नहीं दिया जाता और 'भैरवी-चक्र' तथा 'तत्त्व-चक्र' में प्रवेश का अधिकार जाति या वर्ण के आधार पर नहीं है, अपितु साधक के लिये निर्धारित नियमों को पालन करने में समर्थ कोई भी व्यक्ति चक्रस्थ या चक्र में सम्मिलित हो सकता है। (देखें 'भैरवी-चक्र', मू० २ रु०)

## सुन लो माँ, शेरों-वालो !

पं० वेणीमाधव त्रिपाठी 'पद्मानन्द', १०१ गौतमनगर, दत्त मन्दिर रोड, मुम्बई—६७

हे शरणागत-पीड़ा-नाशिनि ! सुन लो माँ शेरों-वाली !
निज भक्तों की बाँह पकड़ लो, सिंह-वाहिनी माँ काली ।।

परा और अपरा हो मैया, आदि-अन्त से रहिता हो ।
प्रकृति तुहीं हो पुरुष तुहीं हो, ब्रह्म तुहीं शिव-सहिता हो ।।

चारों वेद तेरा गुण गावैं, भुक्ति-मुक्ति देनेवाली ।
निज भक्तों की बाँह पकड़ लो, सिंह-वाहिनी माँ काली ।।

अपने बल द्वारा तू जग में, व्याप्त सदा ही रहती हो ।
ब्रह्मा-विष्णु-सदाशिव को भी, शक्तिमान तू करती हो ।।

सकल सृष्टि का कारण तू हो, सत-रज और तमो-वाली ।
निज भक्तों की बाँह पकड़ लो, सिंह-वाहिनी माँ काली ।।

हे माँ दुर्गे ! याद किये से, सकल दुःख हर लेती हो ।
विधि-वत् ध्यान किये से तेरा, उत्तम शुभ मति देती हो ।।

तेरे बिना कौन उपकारी, दुःख-दारिद्र हरनेवाली ।
निज भक्तों की बाँह पकड़ लो, सिंह-वाहिनी माँ काली ।।

खड्ग-शूल और गदा आदि जो, शस्त्र हाथ में नित धरना ।
दसों दिशाओं में माँ ! उनसे, सदा मेरी रक्षा करना ।।

घण्टा-ध्वनि औ धनुष-घोष से, सदा त्राण करनेवाली ।
निज भक्तों की बाँह पकड़ लो, सिंह-वाहिनी माँ काली ।।

काल-रात्रि हो महा-रात्रि हो, मोह-रात्रि हो हे जननी !
दारुण-रात्रि तुम्हीं हो जननी, कात्यायनी दुख-हरनी ।।

"पद्मानन्द" की इष्ट भवानी, धन सुकीर्ति देनेवाली ।
निज भक्तों की बाँह पकड़ लो, सिंह-वाहिनी माँ काली ।।

---


# भागवत धर्म का प्राचीन इतिहास

[ प्रथम खण्ड : पहला अध्याय—मूल्य १०) ]

मूल लेखक

श्रीमत् स्वामी विद्यारण्य

पता—'चण्डी'-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग (उ० प्र०)–२११००६

# श्रीअम्बा-कृपा-दृष्टि-लाभ-स्तवः

[जयपुर (राजस्थान) के प्रख्यात 'आशु-कवि' स्वर्गीय पण्डित हरिशास्त्री दाधीच श्रीजगदम्बा-कृपा-प्राप्त महा-मनीषी थे। आपकी कितनी ही रचनाओं और विद्वत्ता-पूर्ण निबन्धों से 'चण्डी' के पृष्ठ गरिमा-मण्डित हुये। आपके शिष्य श्रीगोपाललाल जी माथुर, जयपुर ने आपकी प्रस्तुत अप्रकाशित रचना हमें भेजने की कृपा की है। इसके लिये हम तो उनके आभारी हैं ही, सारा शाक्त-जगत् उनका अनुगृहीत रहेगा क्योंकि इस अद्भुत रचना के द्वारा प्रातःस्मरणीय पूज्य शास्त्री जी ने श्री जगदम्बा की कृपा-दृष्टि की महिमा का जो निदर्शन किया है, यह उन्हीं की सिद्ध लेखनी द्वारा सम्भव था। हमें आशा है कि कोई संस्कृत विद्वान् इस स्तव की हिन्दी में व्याख्या करने की कृपा करेंगे और तब इसका रसास्वादन संस्कृत न जाननेवाले पाठक भी कर सकेंगे।—सं०]

श्रीमन्महेश्वर-मुखेऽसित-पुण्डरीके, स्वैरं सदा विहरति भ्रमराण्यनेव।
मातुर्ममांशु-धृत-सम्पदपांग-लेखा, श्रेयस्करी भवतु मङ्गल-मङ्गलायाः ॥१

दुग्धावदात-पृथु-सुन्दर-बन्धुरा या, दक्षाध्वरान्त-कर-वक्षसि विभ्रमन्ती।
नीलोत्पल-स्रगिव भाति दृगन्त-शोभा, सा मे श्रियं दिशतु पर्वत-राज-पुत्र्याः ॥२

जानामि वत्स-वदनालिक-शीर्ष-कान्तम्, अङ्केषु शङ्कर-तनोरधि-मध्य-भागम्।
सीमां स्वकामिव पृथक् प्रतिपादयन्ती, सा दृक् शिवाय भवतां भवतादुमायाः ॥३

यस्याः प्रसादमवलम्ब्य धनञ्जयोऽपि, कृष्णं नियोज्य निज-दारुकमाजि-मध्ये।
उद्दृप्त-कौरव-नृपाञ्जयमाजहार, सा दृष्टिरावहतु मे शुभमम्बिकायाः ॥४

दृष्टा यया सकृदात्त-दयार्द्रश्च गात्रा, लोका सुरन्ति मधवन्ति च यशयन्ति।
दृष्टि-सरोज-दल-मञ्जुलाया, मोहं विनन्तु मम केसरि - विष्टरायाः ॥५

यत्-प्राप्ति-मात्र मुदिताः किल पङ्गवोऽद्री, नुललयन्ति च जडा विबुधी भवन्ति।
मूका पठन्ति कवयः प्रभवन्ति सिद्धाः, शं मे तदक्षि दिशतात् पुर-हैमवत्याः ॥६

दृप्तस्य या समवहृत्य वृकोदरस्य, मूर्धन्यानतस्य कलित-स्तवनस्य कामम्।
याम-द्वयेन सु-दृशं पुनरायत् सा, तस्या दृगस्तु मम भूति-कृते भवान्याः ॥७

याभिः सभासु विकल-द्रुपदात्मजायाः, सम्वर्ध्य शाटक-पटं परि-रक्षिता हि।
निर्व्याज-पावन-दया-रस-पूरितास्ता, दुःखं दृशो व्यपहरन्तु मृड-प्रियायाः ॥८

यासां प्रसादमवलम्ब्य चिराय रामो, जित्वा दशाननमवाप विदेह-पुत्रीम्।
वात्सल्य-भाव-भरिता जलजायतास्ता, दीव्यन्तु मय्यपि दृशो हरि-सोदरायाः ॥९

यस्याः प्रभावतः उदात्त-तरस्तपस्वी, भूमीश्वरः सुरथ आत्म-रिपुं जिगाय ।
मन्वन्तरं पदमवाप ततश्च मोक्षं, सा दृक् दयां कलयतान्मयि चण्डिकायाः ।।१०

या सम्प्रसाद्य च वणिक्-तनये समाधौ, ज्ञानं ददौ सपदि निवृत्तये च तस्मै ।
सन्मञ्जुलं स-करुणं शुचि-मुग्धमक्षि, भद्राऽपि मे दिशतु तद् भव-वल्लभायाः ।।११

यस्या अपाङ्ग-कलनां ललितां वलम्ब्य, सौदर्शनो नृप-सुतो वनमाश्रितोऽपि ।
पत्न्या समं जयमवाप निजं च राज्यम्, सा दृङ् मयि स्फुरतु शङ्कर-चेतनायाः ।।१२

कारुण्य-पुण्य-मरुता नृ-सुतो दधातु, दैन्याकुले मयि शिशाविव तप्त-हार्दे ।
दुर्दिष्ट-शापमुप-शाम्य धनाम्बु-धाराम्, कात्यायनी ललित-लोचन-वारि-वाहा ।।१३

यस्या विलोकन-वशाद् भगवान् गिरीशो, हालाहलं चुलुकयन्त्यति-जागरूकम् ।
शेते न माधव इवाति-चिराय सा दृक्, मद्-भूतयेऽस्तु मदनान्त-कराङ्गनायाः ।।१४

यस्यै सुरा समुदिताः स्पृहयन्ति नित्यम्, ध्यायन्ति पञ्च सततं हृदये स-मोहम् ।
सोऽयमशुभाय भवता दयिताम्बु-श्रीः, शुम्भासुर-प्रमथिनी दृगपाङ्ग-भागः ।।१५

ताटङ्क-हीरक-रुचि-स्फुरदुग्र-दन्तो, नीलाञ्जनच्छविरुदात्त-मदा विलासः ।
मन्मानसे विहरतादुर-मोह-जालान्, उत्पाटयन् भगवती - नयनेभ - राजः ।।१६

स्वैरं भ्रमन्नयन-कन्दर-कोप-कण्ठे, स्वर्णावतंस - रुचि - पुञ्ज-पिशङ्गिताङ्गः ।
कामादि-षड्-रिपु-मृगानपयाय शीघ्रं, क्षेमाय मेऽस्तु शिवयोः सदपाङ्ग-सिंहः ।।१७

कल्पद्रुमः प्रणत-लोक-मनोरथानां, नाट्यालयो ललित-केलि-विलासिनीनाम् ।
त्रासांकुरो विकसितोत्पल-विभ्रमाणां, मन्मूर्ध्नि खेलतु शिवे ! त्वदपाङ्ग-भागः।।१८

संसार-ताप-परिखेद-जुषां जनानाम्, देहेषु यस्य रुचयः कलिताः सकामम् ।
चन्द्रांशु-कान्ति-तुहिनान्त-समे सुखार्थम्, आस्ता महेश-महिषी-करुणा-कटाक्षः ।।१९

वाग्देवता-सहचरा यद् दृशो रमायाः, व्याकर्ष-काय-सुषमा परिवर्द्धकाय ।
कीर्त्यंकुराय दुरितापहराय देव्याः, दिव्याय मे प्रणतिरस्तु दृगञ्चलाय ।।२०

यस्याः प्रकाशमुपलभ्य युधिष्ठिरो द्राग्, अज्ञात-वास-पथिको हि विराट् नरेशम् ।
सम्मोह यस्य सफलत्वमियाय सा दृक्, सौदामिनी स्फुरतु मय्यसिताभ्रिकायाः ।।२१

दग्धं हरेण मदनं यदपाङ्ग-पातो, नाना-विधं समुद-पाद यदंकुरेषु ।
सौभाग्य-वर्द्धन-विधान-पटीयसी सा, दृष्टिः कृषीष्ट-पदमीप्सितमीश्वरायाः ।। २२

असौ द्विधाऽपि दुरवग्रह - दुःखितेषु, विप्रेषु सत्सु च सहस्र-विधा स्वरूपम् ।
धृत्वा ववर्ष सलिले जगदावतान्मे, दारिद्र्यकं विदलयन्तु दृश. शताक्ष्याः ।।२३
यस्या अपाङ्ग-दलताकलनामवाप्य, ब्रह्मा हरिं सभव बोध्य च योजयित्वा ।
दैत्यौ विनाशमयितौ मधु-कैटभाख्यौ, सा दृक् सदाऽभ्युदयदाऽस्तु ममादि-देव्याः ।।२४
देवाधि-राज-पद-वैभव-दान-दक्षो, दुष्कर्म-भञ्जन-शिखो गुण-तत्त्व-कक्षः ।
रक्षा-करस्त्रि-जगतां मद-शोण-शोणः, कोणो दृशः स्फुरतु मय्यनिशं शिवायाः ।।२५
साहित्य-सार-विदुषा हरि-शास्त्रिणेयम्, दृक्-पञ्च-विंशतिरुदार-तराम्बिकायाः ।
उक्ता स-भक्ति पठिताऽऽकलिता सुधीभ्यो, दद्याद् वसन्तु तिलकामिव राज-लक्ष्मीम् ।।२६

---

## श्री दुर्गा-वन्दना

श्री नागेन्द्रदत्त वर्मा, संयुक्त निदेशक पर्यटन, गोरखपुर (उ. प्र.)

तेरे चरणों में हे माँ ! मैं अपना शीश नवाऊँ,
तेरे उपकारों का बदला कैसे बता चुकाऊँ ?
स्नेह-मयी है ममता-मय है दिश्व-वन्द्य जग-जननी,
सिह-वाहिनी कल्याणी है भक्त-वत्सला योगिनी ।
असुर-निकन्दिनि, पाप-नाशिनी, गौरी, उमा, भवानी,
तेरी महिमा नर, सुर, ऋषि, मुनि सर्व-लोक ना जानी ।
तेरी दया-दृष्टि है मुझ पर कैसे उसे भुलाऊँ,
तेरे उपकारों का बदला कैसे बता चुकाऊँ ?
कात्यायिनी, छिन्नमस्ता, काली, रौद्रो, वैष्णो देवी,
सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी तव नाम ज्योति-पुंज देवी ।
माया, चण्डी, मनसा देवी, गार्गी शक्ति-स्रोत देवी,
भिन्न-भिन्न रूपों में दर्शन देती देवी ।
अपरम्पार है तेरी महिमा कैसे मैं बतलाऊँ ।।तेरे०।।
महिष-मर्दिनी बनकर तुमने महिषासुर को मारा,
देव-जनों को त्रास से उसके मातृ-तुल्य हो तारा ।
शुम्भ, निशुम्भ, चण्ड-मुण्ड और रक्त-बीज सँहारा,
सुर, नर, मुनि, गन्धर्व-गणों को भव-भय से निस्तारा ।
धूप-दीप नैवेद्य आदि से ही पूजन करवाऊँ ।।तेरे०।।

## रुद्राक्ष-मन्त्र

प० पू० स्वामी हिमालय अरण्य जी

सत् नमो आदेश। गुरुजो को आदेश। ॐ गुरुजी ! मुखे ब्रह्मा, मध्ये विष्णु, लिङ्ग नाम महेश्वर। सर्व-देव-नमस्कारं। रुद्राक्षाय नमो नमः। गगन-मण्डल में धुन्धुकार, पाताल निरञ्जन निराकार।

निराकार में चर्ण पादुका, चर्ण-पादुका में पिण्डी, पिण्डी में वासुक, वासुक में कामुक, कामुक में कूर्म, कूर्म में मरो, मरी में नाग-फनि —अलस पुरुष ने बैल के सोङ्ग पर राई ठहराई। धीराज धर्म की धूनी जमाई—वहाँ पर रुद्राक्ष सुमेर पर्वत पर जमाइये। उसमें से फूटे छै डाली। एक गया पूर्व, एक गया दक्षिण, एक गया पश्चिम, एक गया उत्तर, एक गया आकाश, एक गया पाताल।

उसमें लाग्या 'एकमुखी' रुद्राक्ष, श्री रुद्र पर चढ़ाइये, श्री ॐकार आदिनाथ जी को। 'दो-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये चन्द्र-सूर्य को। 'तीन-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये तीन लोकों को। 'चतुर्मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये चार वेदों को। 'पाँच-मुखी' रुद्राक्ष पाँच पाण्डवों को। 'छः-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये षट्-दर्शन को। 'सात-मुखो' रुद्राक्ष चढ़ाइये सप्त-समुद्र को।

'अष्ट-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये अष्ट-कुली नागों को। 'नव-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये नव-नाथों को। 'दश-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये दश अवतारों को। 'ग्यारह-मुखो' रुद्राक्ष चढ़ाइये ग्यारह रुद्रों को। 'द्वादश-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये बारह-पन्थ (सूर्य) को। 'तेरह-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये तेंतीस कोटि देवो-देवताओं को। 'चौदह-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये चौद-भुवन (रतन) को।

'पन्द्रह-मुखी' रुद्राक्ष पन्द्रह तिथियों को। 'सोलह-मुखो' रुद्राक्ष चढ़ाइये सोलह शृङ्गार को। 'सतरह-मुखी' चढ़ाइये श्री सीता माता को। 'अठारह-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये अठारह भार वनस्पति को (अठारह पुराण)। 'उन्नीस-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये अलस पुरुष को। 'बीस-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये विष्णु भगवान को। 'इक्कीस-मुखी' रुद्राक्ष चढ़ाइये इक्कीस ब्रह्माण्ड शिव को।

'निरमुखी' (निरमुखी रुद्राक्ष=बिना मुखवाला रुद्राक्ष) रुद्राक्ष चढ़ाइये निराकार को। इतना रुद्राक्ष मन्त्र सम्पूर्ण भया श्रीनाथ जी ! गुरुजी आदेश ! आदेश !

## श्रीचण्डी-चरित्र-चित्रण

पं० जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि-पुष्कर', शास्त्री, वाराणसी (उ० प्र०)

महा-काली होके, खल-दल का विनाश करे—और जो उड़ाती, जय-विजय की झण्डी है ॥
महा-लक्ष्मी होके, सुख-सम्पति-निवास करे—भक्तों-हित बन जाती, धन-धान्य-मण्डी है ॥
महा-वाणी होके, विद्या-बुद्धि का विकास करे—सुभग-सुयश-साधना की पगडण्डी है।
कहे 'कवि पुष्कर' जो तीनों रूप चित्त धरे—महा-शक्ति-शालिनी, प्रचण्ड देवी चण्डी है।

दोहा—जो करती क्षण एक में, कोटि कल्पतरु-सृष्टि।
यदि वह किंचित फेर दे, अपनी दया-दृष्टि ॥१॥
सर्वोपरि करती रहे, अपने चरित ललाम।
उसके चरण-सरोज पै, निशि-दिन प्रथित प्रणाम ॥२॥
मेरे जो अपराध हों, क्षमा करे जन जान।
जो भी पुण्य-प्रभाव हों, उन पर दे वर-दान ॥३॥
मैं इतना हूँ जानता, जगदम्बा गुण-खान।
सच्चे सेवक को सदा, अपनाती प्रिय मान ॥४॥

### विश्व-तन्त्र-सङ्घ के सूत्रधार

# धर्माधिकारी स्व० पण्डित महिधर जी डंगवाल

**पं० रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', ४२ बलरामपुर हाउस, प्रयाग (उ० प्र०)–२**

**['विश्व-तन्त्र-सङ्घ' के सम्बन्ध में 'अ० भा० शाक्त-सम्मेलन' के अध्यक्ष भू० पू० न्यायाधीश पं० शिवनाथ जी काटजू ने पहले पहल रहस्योद्घाटन वर्षों पूर्व किया, जिसका विवरण 'चण्डी में तथा अनेक दैनिक पत्रों में प्रकाशित हुआ। आपने उक्त सङ्घ के अमेरिकी शाखा के अध्यक्ष स्व० पियरे बर्नार्ड का पूरा परिचय प्राप्त किया और उनकी धर्म-पत्नी से तो आपका लम्बा पत्र-व्यवहार चला। इस सबका विवरण जब कभी पुस्तक-रूप में प्रकाशित होगा, तब अध्यात्म-जगत् चकित रह जायगा, इसमें सन्देह नहीं। उक्त सङ्घ के मूल में भारत के ही एक मनस्वी थे। उनका परिचय श्रद्धेय पहाड़ी जी के शब्दों में पढ़ कर पाठक प्रसन्न होंगे, ऐसी आशा है।—सं०]**

टेहरी (उ० प्र०) केदार-खण्ड के 'धर्माधिकारी'–पद पर आसीन महा-ज्ञानी पण्डित महिधर डंगवाल ने महाराज कीर्तिशाह के राज्य-काल में 'कीर्ति-पंचांग' का प्रकाशन सन् १८८४ ई० में स्थानीय लीथो प्रेस में किया था। आज भी उनके परिवार के लोग लखनऊ से उसका नियमित प्रकाशन कर रहे हैं।

१९वीं शती के अंतिम चरण में अमेरिका से एक बालक सैलवट हेमटी ६ वर्ष की आयु में भारत अपने किसी अभिभावक के साथ आया। उसने तान्त्रिक दीक्षा लेकर २० वर्ष तक हिमालय में योगियों से अपूर्व ज्ञान अर्जित किया। महिधर जी ही उसके गुरु थे। लौटकर उसने अमेरिका में **'महिधर शर्मा तन्त्र-संस्थान'** की नींव डाली। सन् १९०२ में डी० जी० एलमूट उसके संघाध्यक्ष थे। उस समय स्वामी रामतीर्थ महाराज जब अमेरिका गये, तो उन्होंने उनसे पूछा कि 'इस समय भारत में कौन-कौन मनीषी आचार्य हैं ?' स्वामीजी ने बताया कि 'महा-ज्ञानी ज्ञानानन्द जी और धर्माधिकारी पं० महिधर शर्मा'—दो परम विद्वान् हैं। सन् १९३० के कुम्भ-मेले में उक्त 'संस्थान' के प्रमुख ने प्रयाग में 'प्रथम तान्त्रिक सम्मेलन' का अधिवेशन किया और उसके अध्यक्ष महिधर जी थे। स्वामी राम ने अपना स्थायी निवास टेहरी बनाया था और वहीं उन्होंने समाधि ली।

प्रयाग उच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश पण्डित शिवनाथ काटजू ने इस सम्बन्ध में खोज की किन्तु उक्त अधिवेशन का विवरण उपलब्ध न हो सका। सम्भव है कि वह 'गढ़वाली' साप्ताहिक में उस समय छपा हो, उसकी खोज होनी चाहिये।

पण्डित महिधर शर्मा का जन्म सन् १८४९ में गढ़वाल के पौड़ी नगर के निकट, कोठार ग्राम में हुआ था। इस ग्राम के बहुगुणा, उनियाल और डंगवालों की तान्त्रिक और ज्योतिष की पारिवारिक परम्परा रही है। महिधर जी सन् १८७८ तक पौड़ी और हमारे गांव डांग रहे। वे हमारे कुल-गुरु थे और मेरे बूढ़े दादा स्वर्गीय बालादत्त घिल्डियाल जी के परम स्नेही थे। उस समय श्रीनगर अपने वैभव पर था और दादाजी का एक बड़ा विद्वत्-समाज था, जिसकी बैठकें जमती थीं और संस्कृत, ज्योतिष, आयुर्वेद, भाषाओं, बोलियों, साहित्य, धर्म, दर्शन आदि विविध विषयों पर गम्भीर बहसें होती थीं। इसी समय उन्होंने अमर-कोष, बाल-बोध, मुहूर्त-चिन्तामणि आदि सार-गर्भित पोथियों की रचना की।

'गढ़वाली मासिक' के जुलाई, १९१२ ई० के अङ्क में महिधर जी ने अपने लेख 'धार्मिक संस्कार' में लिखा है कि "गायत्री-दीक्षा, शक्ति-दीक्षा है····वेदांग-सूत्र, स्मृतियों में उसकी चर्चा तक नहीं है।" उनका अपना मत है कि "आजकल उपनयन, विवाह के संस्कार वेदाधारी सम्पादन नहीं होते हैं। पहले वर को खड्ग दिया जाता था और कन्या गौ मानी जाती थी। 'अज-वध' उस समय मांस-मक्षियों ने अपने भोजन के लिये जोड़ दिया। वेद में कुशा की गौ बनाकर छेदन करते थे। 'बलि-दान' पुरोहितों का धर्म-विप्लव था। उपनयन में दक्षिण के संस्कार सही हैं। वहाँ विद्या पढ़ने पर्यन्त ब्रह्मचारी मधोकरी (भिक्षा) पका अन्न माँग कर खाते हैं। पीछे समावर्तन करते, तब अपनी जाति में मिल जाते थे।"

महिधर जी चाहते थे कि विद्वज्जन कहीं बैठ कर इस पर विचार करें और आज के समय के साथ संस्कारों को जोड़ें। उनकी लिखी मन्त्र-महोदधि, गोरक्ष-पद्धति, विद्या-सुन्दर, वृहज्जालिक, मुहूर्त-चिन्तामणि, नीलकण्ठ आदि कई पुस्तकें बम्बई से प्रकाशित हैं।

मेरे पिता की मृत्यु हो जाने पर जब हम डाँग, श्रीनगर के निकट अपने गाँव गये, तो महिधर जी के पुत्र पं० रोहणीधर जी डंगवाल प्रायः हमारे यहाँ टिकते और पुरानी बातें सुनाते थे। वे वाम-मार्गी थे। उनके अनुसार "पण्डित शिवानन्द थपलियाल (मुख्य न्यायाधीश, टेहरी) पं० महिधर जी के फुफेरे भाई थे। एक दिन उन्होंने कहा कि उनको अपनी साधना की दिशा बतावें। मध्यरात्रि को वे अपने कमरे में चारपाई पर लेटे थे कि अचानक मिलंगखां नदी के उस पार से लगा कि अन्धड़-सी एक भयावह स्वर-लहरी आगे बढ़ रही है। पडोली, चाल, मांगण, ढोल, तोतावांणी, सोवन, कनौटी, खांकर, घण्टा, घांटी, धाड़, घुंघरू, मृदंग, थाली, चिमटा आदि कई वाद्यों का स्वर उनकी ओर बढ़ रहा था। विचित्र कोलाहल, भयावह आवाजें! आँगन में नृत्य कर रहे—पिशाच, डाकणी, विचित्र आकृतियाँ! कोई नरमुण्ड धारण किये, उलटे पाँववाले, तो कुछ बौने, राक्षसी पैने टस्करी कुछ के दाँत, लम्बे नाखून, गड्ढे में धँसी आँखें! और, ये यह देख कर स्तम्भित रह गये कि उनके बीच स्वयं महिधर जी नाच रहे थे! कुछ समय बाद वे लौट गये और कोलाहल नदी पार अन्त में खो गया। अब वे चैतन्य हुये, तो पाया कि महिधर जी उनके सिरहाने बैठे हैं!"

मेरी पीढ़ी के सभी भाइयों, बहुओं के गुरु महिधर जी के नाती स्वर्गीय पं० मेदनीधर डंगवाल जी थे। उनसे कई बार मिलने का सौभाग्य रहा। उन्होंने भी एक विचित्र घटना सुनाई कि "जब महिधर जी की अंत्येष्टि-क्रिया हुई, तो कपाल-क्रिया के समय ज्ञात हुआ कि सिर भी पूर्ण भस्म हो गया था। उनका समूचा व्यक्तित्व भस्म में पंच-भूत हो गया। लोग इसे संयोग के वशीभूत हो नमन कर बैठे। कपाल-क्रिया स्वयं अदृश्य शक्ति ने की, मानव के लिये वह विधान नहीं छोड़ा।"

यह वास्तव में खेद का विषय है कि धर्माधिकारी पं० महिधर जी जैसे भारतीय विद्वानों पर आज तक किसी 'अनुसन्धान-पीठ' का ध्यान नहीं गया है। प्रयाग के 'गङ्गानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ' के अधिकारियों को इस दिशा में विचार करना चाहिए।


# अघोरी का उपदेश : तारापुर का महा-मानव

सम्पादक

**'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०**

**ये दो पुस्तकें भारत के प्रख्यात सिद्ध महात्मा वामा क्षेपा के उपदेशों, तारा-पीठ, 'अघोर' शब्द और अघोर-साधना पर प्रामाणिक प्रकाश डालती हैं। मूल्य ४ रु० : १ रु०**

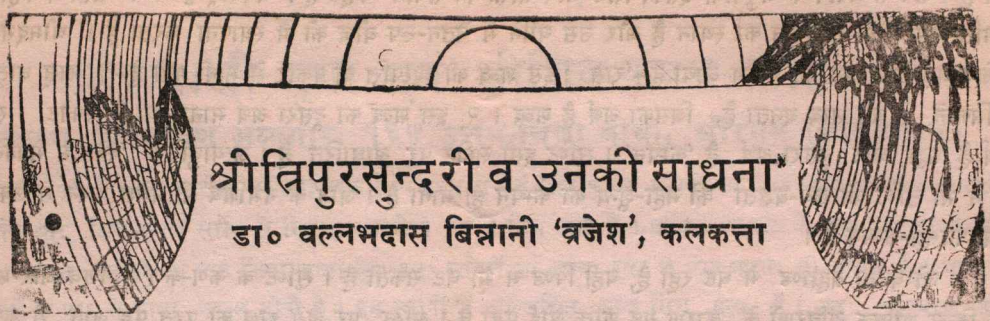

# श्रीत्रिपुरसुन्दरी व उनकी साधना

डा० वल्लभदास बिन्नानी 'व्रजेश', कलकत्ता

माँ भगवती के ललित भाव का नाम ही 'त्रिपुर-सुन्दरी' है। यही श्री विद्या, षोडशी या ललिता हैं। यह शक्ति का दिव्य उदात्त रूप है। यही स्वरूप विश्व का सञ्चालन एवं सृजन करता है। 'अध्यात्म-रामायण' में सीता ने हनुमान से कहा है कि 'भगवान् राम तो कुछ करते नहीं, अवतार की समस्त लीलायें मैंने ही की हैं। 'त्रिपुरा-रहस्य' में त्रिपुरा या ललिता को करुणा का अवतार कहा गया है। वे जगन्माता होने के नाते सर्वाधिक कृपा-पूर्णा हैं। 'देवी-माहात्म्य' (दुर्गा सप्तशती) में कहा गया है कि–

'या देवी सर्व-भूतेषु दया-रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।'

ऋग्वेद में इस महा-शक्ति का प्रतिनिधित्व आदित्य-देवी करती हैं, किन्तु अथर्व-वेद के सूक्त में स्वयं भगवती कहती हैं कि—'मैं रुद्रों, वसुओं, आदित्यों–आदिति-पुत्र सूर्यादि देवताओं के साथ विश्वमित्र के साथ चलती हूँ अर्थात् समस्त साकार देवता, उनके ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्माण्ड-गत जड़ और चेतन के साथ मैं हूँ। प्रत्येक साकार देवता के साथ मैं साकार स्त्री-रूप में हूँ। जड़ के साथ भी स्वातन्त्र्य कार्य-शक्ति, सूक्ष्म और स्तम्भित ज्ञान-शक्ति मैं हूँ।'

देवताओं, ऋषियों एवं साधकों ने शक्ति के इस विलक्षण स्वरूप को जानने की निरन्तर चेष्टा की है। महर्षि अगस्त्य के शक्ति-सूत्र का प्रथम सूत्र है–'अथातः शक्ति-जिज्ञासा'।

'देव्युपनिषद्' के श्री-सूक्त के मन्त्र तथा श्री विद्या की पंचदशी में भी इसी रूप का वर्णन है। 'बह्वृच उपनिषद्' में ललिता-रूप में ईश्वर का चिन्तन किया गया है। 'त्रिपुरा-तापिनी' में देवी के स्थूल और सूक्ष्म विग्रह के पूजन का विधान किया गया है। श्री गौड़पदाचार्य ने 'विद्या-रत्न-सूत्र' में भगवती त्रिपुरा सर्व-मङ्गला रूप का चित्रण किया है तथा आचार्य शङ्कर ने 'ललिता-त्रिशती' में तथा 'प्रपञ्चसार' जैसे विस्तृत ग्रन्थों की रचना कर त्रिपुरा की आराधना की प्रक्रिया निर्दिष्ट की है।

हिन्दू-धर्म में विद्या-शक्ति को ही जगज्जननी स्वीकार किया है। जिस प्रकार ब्रह्मा का ब्रह्मत्व उसकी शक्ति है, उसी प्रकार जड़ का जड़त्व भी उसकी शक्ति है। सत् का सत्यपना भी उसकी शक्ति है। संसार के सभी जड़ और चेतन का आधार यही शक्ति है। सृष्टि के पहले शिव और शक्ति ही थी। शिव प्रकाश-रूप से शक्ति में विमर्श-रूप से प्रतिष्ठित होकर बिन्दु-स्वरूप बन जाते हैं। शक्ति ही विश्व में प्रवेश करती है, तभी बिन्दु का विकास होकर नाद बनता है। नाद और बिन्दु के संयोग से काम की उत्पत्ति होती है। काम और कला के संयोग से त्रिपुर-सुन्दरी स्वरूप में 'काम-कला' की निष्पत्ति होती है। इसी से अखिल-विश्वात्मक सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। इसी कारण तन्त्रज्ञों ने त्रिपुरा का स्वरूप वासनात्मक अर्थात् मनोमय माना है। त्रिपुरा के उपासकों में सर्वत्र काम या मन्मथ का प्राधान्य है।

'काम' एक भाव है–एक आन्तरिक ऊर्जा–विराट् सृजन। "एकोऽहम् बहु स्याम" की इच्छा से ही सृष्टि-रचना का प्रारम्भ माना जाता है। ब्रह्म निर्विकार है और शक्ति में स्वतन्त्रता का अभाव है। अतः दोनों के संयोग से ही यह कार्य सम्पन्न होता है। देवी-भागवत् में स्वयं देवी ने कहा है—'मुझ में और ब्रह्म में सदैव एकत्व है। कहीं भी भेद नहीं है। जो वह है, सो मैं हूँ और जो मैं हूँ, सो वह है।' सृष्टि का निरन्तर सृजन ब्रह्म और शक्ति के निरन्तर एकात्म का

प्रतिफल है। शैव सम्प्रदाय के अनुयायी इसको शिव और शक्ति का संयोग कहते हैं। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि—'मेरी शक्ति-रूपी योनि गर्भाधान का स्थान है और उस योनि में चेतन-रूप बीज की मैं स्थापना करता हूँ।' श्रीमद्भागवत में इसके लिये बड़े प्रिय शब्द का प्रयोग आया है—'रास'। इस शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से मानी गयी है—१. रास् धातु में छत्र प्रत्यय मिलाने से यह शब्द बनता है, जिसका अर्थ है शब्द। २. इस शब्द का दूसरा अर्थ माना गया है 'स्फोट'। स्फोट का एक अर्थ है 'ब्रह्म' और दूसरा अर्थ है 'कम्पन'। सृष्टि इसी स्फोट पर आधारित है। अत्याधुनिक 'क्वेण्टम मेकेनिक्स' के विद्वानों ने भी सृष्टि की लय-बद्धता को महा-शून्य का कम्पन ही माना है। जीव के गर्भाशय में प्रवेश करने से लेकर मृत्यु-पर्यन्त कम्पन-ही-कम्पन है।

जो घटना ब्रह्माण्ड में घट रही है, वही पिण्ड में भी घट सकती है। सृष्टि के कण-कण में शिव और शक्ति का वास है, किन्तु भौतिक आवरणों के कारण यह शक्ति सोई पड़ी है। अग्नि पर जैसे राख की परत पड़ जाने से ऊष्मा कम हो जाती है, वैसे ही मानवीय कामनाओं एवं भोगेच्छा से जीवन की ऊर्जा-शक्ति दब जाती है। तन्त्र कहते हैं कि आवरणों को दूर करो और सोई हुई शक्ति को अपना काम करने दो। तन्त्र यह आश्वासन देते हैं कि शिव और शक्ति को अपने अन्तर में खोज निकालना सम्भव है। बाधाओं को दूर करते ही दोनों का मिलन स्वभावतः हो जायेगा।

इसीलिए प्रायः सभी तान्त्रिक साधक भगवती के ललित भाव—त्रिपुरा, ललिता षोडशी, श्री विद्या आदि रूपों को सगुण कहते हैं। तान्त्रिक साधनाओं में भाव और भावना को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। भावना ही शक्तियों का भण्डार है। भावना से ही शक्तियों का उदय होता है।

विश्वासों के आधार पर ही जीवन का स्थूल रूप तैयार होता है। सङ्कल्प से ही परिस्थितियाँ पैदा होती हैं। हम जैसी भावना करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। इसीलिए मानव प्रवृत्ति के आधार पर तन्त्र में तीन प्रकार के भाव व्यक्त किए गए हैं—१. पशु-भाव २. वीर-भाव और ३. दिव्य-भाव। अहङ्कार-युक्त जीव को ही 'पशु' माना गया है। जो पाशों—काम-क्रोधादि भावनाओं में बँधा है, वही पशु है। तमो-प्रधान प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को ही पशु-तुल्य माना गया है। इसीलिए त्रिपुरा-साधना में पशु-भाव रखनेवाले साधक को पंच-मकारों के उपयोग का अधिकार नहीं दिया गया है।

त्रिपुरा काम की देवी हैं। वे भगवान् शिव के ऊपर कमलासन पर विराजमान हैं। धनुष, बाण, अंकुश और पाश—ये उनके चारों हाथ में आयुध हैं, जो बड़े ही विलक्षण प्रतीक हैं। दाहिनी ओर के ऊपरवाले हाथ में 'धनुष' काम-भाव है और उसी ओर के नीचेवाले हाथ का 'बाण' रति-भाव है। बाँयीं ओर के नीचे के हाथ में 'पाश' प्रेम-भाव का तथा ऊपरवाले हाथ में 'अंकुश' नियन्त्रण-भाव का प्रतीक है।

साधारण व्यक्ति में जब काम-भाव जागृत होता है तथा उसकी तृप्ति में किसी प्रकार की बाधा आती है, तो उसमें क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध से अविवेक होता है, अविवेक से स्मृति-भ्रंश, स्मृति-भ्रंश से बुद्धि-नाश और बुद्धि-नाश से उस पुरुष का सब कुछ नष्ट हो जाता है। कामातुर इन्द्रियों के पीछे भटकनेवाला मन पुरुष की बुद्धि को ऐसे ही हरण कर लेता है, जैसे पानी में नौका को वायु खींचती है।

सारांश यह है कि दुर्बल इच्छा-शक्तिवाला दरिद्र, हीन-भावनावाला, तमोगुणी व्यक्ति भगवती त्रिपुर-सुन्दरी को कदापि प्रसन्न नहीं कर सकता। वे तो मनस्वी, दृढ़ एवं राजसी वीर साधकों की उपास्य देवी हैं। वीर वह है, जो काम-क्रोध-राग-द्वेषादि से मुक्त हो गया हो। जो परोपकारी, परमार्थी और जितेन्द्रिय है, उसे ही त्रिपुर-सुन्दरी की साधना में समर्पित शक्ति-भाव से पंच-मकारों के उपयोग का अधिकार तन्त्र ने दिया है।

# श्रीइन्द्राक्षी दुर्गा एवं श्रीशिव-कवच-स्तोत्र

**श्री श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अय्यंगार, १६४ उत्तम-चित्रा वीथी, श्रीरंगम् (तमिलनाडु)**

दीर्घायु एवं निरन्तर आरोग्य की प्राप्ति के लिए इन्द्राक्षी एवं शिव-कवच स्तोत्रों का पाठ श्रेयःप्रद है। इन्द्राक्षी-स्तोत्र से दीर्घायु और शिव-कवच स्तोत्र से निरन्तर आरोग्य आदि मिल जाते हैं। दक्षिण भारत के सभी शाक्तों के घरों में संन्ध्या-काल में इन स्तोत्रों का पाठ किया जाता है। इन स्तोत्रों का उच्च स्वर से पाठ करना ही उचित है। यात्रा के समय इन स्तोत्रों के पाठ से यात्रा सफल होती है। इन स्तोत्रों में उल्लिखित मन्त्र सिद्ध मन्त्र हैं। अतः पुरश्चरण, होम आदि विधि-विधान की आवश्यकता नहीं है।

**विनियोग—ॐ अस्य श्रीइन्द्राक्षी-स्तोत्र-महा-मन्त्रस्य श्रीशची-पुरन्दर ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीइन्द्राक्षी दुर्गा देवता, महा-लक्ष्मीः बीजं, भुवनेश्वरी शक्तिः, भवानी कीलकं, मम श्रीइन्द्राक्षी-प्रसाद-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।**

**ऋष्यादि-न्यास—श्रीशची-पुरन्दर-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप् - छन्दसे नमः मुखे, श्रीइन्द्राक्षी-दुर्गा-देवतायै नमः हृदि, महा-लक्ष्मी-वीजाय नमः लिंगे, भुवनेश्वरी-शक्त्यै नमः नाभौ, भवानी - कीलकाय नमः पादयोः, मम श्रीइन्द्राक्षी-दुर्गा-प्रसाद-सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।**

| षडङ्ग-न्यास | कर-न्यास | अङ्ग-न्यास |
|---|---|---|
| इन्द्राक्ष्यै | अंगुष्ठाभ्यां नमः | हृदयाय नमः |
| महा-लक्ष्म्यै | तर्जनीभ्यां नमः | शिरसे स्वाहा |
| माहेश्वर्यै | मध्यमाभ्यां नमः | शिखायै वषट् |
| अम्बुजाक्ष्यै | अनामिकाभ्यां नमः | कवचाय हुं |
| कात्यायन्यै | कनिष्ठिकाभ्यां नमः | नेत्र-त्रयाय वौषट् |
| कौमार्यै | करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः | अस्त्राय फट् |

**ध्यान—'ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ' से दिग्बन्धन कर ध्यान करे। यथा—**

**नेत्राणां दशभिः शतैः परिवृतां अत्युग्र-चर्माम्बराम्,**
**हेमाभां महतीं विलम्बित-शिखामामुक्त-केशान्विताम्।**
**घण्टा-मण्डित-पाद-पद्म-युगलां ,नागेन्द्र-कुम्भ-स्तनोम्,**
**इन्द्राक्षीं परि-चिन्तयामि मनसा कल्पोक्त-सिद्धि-प्रदाम् ।।१**
**इन्द्राक्षीं द्वि-भुजां देवीं, पीत - वस्त्र - द्वयान्विताम्।**
**वाम-हस्ते वज्र-धरां, दक्षिणेन वर-प्रदाम् ।।२**

इन्द्रादिभिः सुरैर्वन्द्यां, वन्दे शङ्कर - वल्लभाम् ।
एवं ध्यात्वा महा - देवीं, पठामि सर्व - सिद्धये ।।३

इन्द्र उवाच

इन्द्राक्षी पूर्वतः पातु पात्वाग्नेय्यां तथेश्वरी । कौमारी दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां पातु पार्वती ।। वाराही पश्चिमे पातु वायव्यां नारसिंहयपि । उदीच्यां काल-रात्रिर्मां ऐशान्यां सर्व-शक्तयः ।। भैरव्यूर्ध्वं सदा पातु पात्वधरे वैष्णवी तथा । एवं दश-दिशो रक्षेत् सर्वा सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी।।

दण्डक—ॐ नमो भगवति, इन्द्राक्षि, महा-लक्ष्मि, सर्व-जन-वशङ्करि, सर्व-दुष्ट-ग्रह-स्तम्भिनि, स्वाहा ।

ॐ नमो भगवति, पिङ्गल-भैरवि, त्रैलोक्य-लक्ष्मि, त्रैलोक्य-मोहिनि, इन्द्राक्षि, मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।

ॐ नमो भगवति, भद्र-कालि, महा-देवि, कृष्ण-वर्णे, तुङ्ग-स्तने, शूर्प-हस्ते, कपाट-वक्षः-स्थले, कपाल-माला-धरे, परशु-धरे, चाप-धरे, विकृत-रूप-धरे, विकृत-रूप-महा-कृष्ण-सर्प-यज्ञोपवीतिनि, भस्मोद्धूलित-सर्व-गात्रि, इन्द्राक्षि ! मां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।

ॐ नमो भगवति, प्राणेश्वरि, प्रेतासनि, सिंह-वाहने, महिषासुर-मर्दिनि ! उष्ण-ज्वर-पित्त-ज्वर-वात-ज्वर-श्लेष्म-ज्वर-कफ-ज्वर-आलाप-ज्वर-सन्निपात-ज्वर - माहेन्द्र-ज्वर-कृत्यादि-ज्वर-एकाह्निक - ज्वर-द्व्याह्निक-ज्वर-त्र्याह्निक-ज्वर - चातुरह्निक-ज्वर-पाञ्चाह्निक-ज्वर-पक्ष-ज्वर-मास-ज्वर-षाण्मास-ज्वर-सम्वत्सर-ज्वर-सर्वाङ्ग-ज्वर नाशय नाशय, हर हर, हन हन, दह दह, पच पच, ताडय ताडय, आकर्षय आकर्षय, विद्वेषय विद्वेषय, स्तम्भय स्तम्भय, मोहय मोहय, उच्चाटय उच्चाटय, हुं फट् स्वाहा ।

ॐ ह्रीं ॐ नमो भगवति, प्राणेश्वरि, प्रेतासने, लम्बोष्ठि, कम्बु-कण्ठि, काल-कालि, काम-रूपिणि, पर-मन्त्र-पर-यन्त्र-पर-तन्त्र-प्रभेदिनि, प्रति-भट-विध्वंसिनि, पर-बल-तुरग-विमर्दिनि, शत्रु-करच्छेदिनि, शत्रु-मांस-भक्षिणि, सकल-दुष्ट-ज्वर-निवारिणि, भूत-प्रेत-पिशाच-ब्रह्म-राक्षस - यक्ष-यम-दूत-शाकिनी-डाकिनी-कामिनि, स्तम्भिनी-मोहिनी-वश-ङ्करि, कुक्षि-रोग-शिरो-रोग-नेत्र-रोग-क्षयापस्मार-कुष्ठादि-महा-रोग-निवारिणि ! मम सर्व-रोगं नाशय नाशय, ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रुँ फट् स्वाहा ।

ॐ ऐं श्रीं हुँ हुँ इन्द्राक्षि ! मां रक्ष रक्ष, मम शत्रून् नाशय नाशय, जल-रोगं शोषय शोषय, दुःख-व्याधीन् स्फोटय स्फोटय, क्रूरान् अरीन् भंजय भंजय, मनो-ग्रन्थि प्राण-ग्रन्थि शिरो-ग्रन्थि घातय घातय, इन्द्राक्षि ! मां रक्ष रक्ष हुँ फट् स्वाहा ।

ॐ नमो भगवति, माहेश्वरि, महा-चिन्तामणि, सकल-सिद्धेश्वरि, सकल-जन-मनोहारिणि, काल-काल-रात्रि, अनले, अजिते, अभये, महा-घोर-प्रतिहत-विश्व-रूपिणि, मधु-सूदनि, महा-विष्णु-स्वरूपिणि, नेत्र-शूल-कर्ण-शूल-कटि-शूल-पक्ष-शूल-पाण्डु-रोगादीन् नाशय नाशय। वैष्णवि ! ब्रह्मास्त्रेण विष्णु-चक्रेण रुद्र-शूलेन यम-दण्डेन वरुण-पाशेन वासव-वज्रेण सर्वान् अरीन् भंजय भंजय, यक्ष-ग्रह-राक्षस-ग्रह-स्कन्द-ग्रह-विनायक-ग्रह-बाल-ग्रह-चोर-ग्रह-कूष्माण्ड-ग्रहादीन् निग्रह निग्रह, राज-यक्ष्म-क्षय-रोग-ताप-ज्वर-निवारिणि ! मम सर्व-ज्वरं नाशय नाशय, सर्व-ग्रहान् उच्चाटय उच्चाटय, हुँ फट् स्वाहा।

इन्द्राक्षी नाम सा देवी दैवतैः समुदाहृता।
गौरी शाकम्भरी देवी दुर्गा-नाम्नीति विश्रुता॥
नित्यानन्दी निराहारी निष्कलायै नमोऽस्तु ते।
कात्यायनी महा-देवी वज्र-घण्टा महा-..पाः॥
सावित्री सा च गायत्री ब्रह्माणी ब्रह्म-वादिनी।
नारायणी भद्र-काली रुद्राणी कृष्ण-पिंगला॥
अग्नि-ज्वाला रौद्र-मुखी काल-रात्रिः तपस्विनी।
मेघ-स्वना सहस्राक्षी विकटाङ्गी जडोदरी॥
महोदरी मुक्त-केशी घोर-रूपा महा-बला।
अजिता भद्रदाऽनन्ता रोग-हर्त्री शिव-प्रिया॥
शिव-दूती कराली च प्रत्यक्ष-परमेश्वरी।
एकाक्षरी पर-ब्रह्मो स्थूल-सूक्ष्म-प्रवर्धिनी॥
नित्यं सकल-कल्याणी भोग-मोक्ष-प्रदायिनी।
महिषासुर-संहर्त्री चामुण्डा सप्त-मातृका॥
वाराही नारसिंही च भीमा भैरव-नादिनी।
श्रुतिः स्मृतिर्मेधा विद्या-लक्ष्मीः सरस्वती॥
अनन्ता विजयाऽपर्णा मानस्तोकाऽपराजिता।
शिवा भवानी रुद्राणी शङ्करार्ध-शरीरिणी॥
ऐरावत-गजारूढा वज्र-हस्ता वर-प्रदा।
धूर्जटी विकटी घोरी अष्टाङ्गी नर-भोजिनी॥
भ्रमरी काञ्चि-कामाक्षी क्वणन्माणिक्य-नूपुरा।
हींकारी रौद्र-भेताली हुंकारा मृत - पायिनी॥

त्रिपाद्रुस्म-प्रहरणा त्रिशिरा रक्त-लोचना ।
शिवा च शिव-रूपा च शिव-भक्ति-परायणी ।।
मृत्युञ्जयी महा-मायी सर्व-रोग-निवारिणी ।
ऐन्द्री देवी सदा कालं शान्तिमाशु करोतु मे ।।

गायत्री—भस्मायुधाय विद्महे रक्त-नेत्राय धीमहि तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् ।

एतत् स्तोत्रं जपेन्नित्यं सर्व-व्याधि-निवारणम् ।
रणे राज-भये चौर्ये सर्वत्र विजयी भवेत् ।।
एतैर्नाम-पदैः दिव्यैः स्तुता शक्रेण धीमता ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं अप-मृत्यु-भयापहम् ।।
क्षयापस्मार-कुष्ठादि ताप-ज्वर-निवारणम् ।
शतमावर्तयेद् यस्तु मुच्यते व्याधि-बन्धनात् ।
आवर्तयन् सहस्रं तु लभते वांछितं फलम् ।।

आरती—सर्व-मङ्गल-मांगल्ये, शिवे, सर्वार्थ-साधिके !
शरण्ये त्र्यम्बिके, गौरि, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।

'इन्द्राक्ष्यै' आदि मन्त्रो से फिर कर-न्यास और अङ्ग-न्यास करके 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र से दिग्विमोक करना चाहिये ।

---


## महाकाल-संहिता

( मूल-मात्र : संस्कृत में )

'महाकाल-संहिता' तन्त्र का एक अति प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ रहा है । इस ग्रन्थ के निम्न चार खण्ड प्रकाशित हुये हैं । 'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए विशेष रियायती मूल्य है—

| | |
|---|---|
| काम-कला-काली-खण्ड, मूल्य ६६) | काम-कला-काली-खण्ड, रियायती मूल्य ८०) |
| गुह्य-काली-खण्ड—१ मूल्य ७०) | गुह्य-काली-खण्ड—१, ,, मूल्य ६०) |
| गुह्य-काली-खण्ड—२, मूल्य ६०) | गुह्य-काली-खण्ड—२, ,, मूल्य ५०) |
| गुह्य-काली - खण्ड—३, मूल्य ४८) | गुह्य-काली-खण्ड—३, ,, मूल्य ४०) |

सभी खण्ड शक्ति-साधना हेतु महत्व-पूर्ण हैं । सभी सजिल्द हैं और उत्तम कागज पर छपे हैं ।

***

## प्राण-तोषिणी तन्त्र

**१२५ प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों द्वारा तान्त्रिक-साधना के महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन**

भाग १ : सर्ग-काण्ड एवम् धर्म-काण्ड, मूल-मात्र (संस्कृत में)
सुन्दर सजिल्द : 'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०
भाग २ : अर्थ-काण्ड एवम् काम्य-काण्ड, मूल-मात्र रियायती मूल्य ३०-०० रु०

मन्त्र-साधना के जिज्ञासुओं के लिये प्रामाणिक शोध-पूर्ण ग्रन्थ

# मन्त्र-कोष

मन्त्रों का शोधात्मक संग्रह

[ तीन खण्डों में ]

- पञ्चायतन खण्ड
- दश महा-विद्या खण्ड
- विविध मन्त्र संग्रह
- वर्ण-बीज-कोष

मूल्य ५५); सजिल्द मूल्य ६५)

'चण्डी' सदस्यों के लिये रियायती मूल्य ४५): सजिल्द मूल्य ५५) रु०

# सिद्धिदा 'सप्तशती' सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें

**१—सप्तशती-तत्त्व** १०-००

'सप्तशती' के ऐतिहासिक आख्यान की दार्शनिक व्याख्या ।

**२—सप्तशती-सूक्त-रहस्य** १५-००

सप्तशती की पाँच स्तुतियों—१ रात्रि-सूक्त, २ शक्रादि-स्तुति, ३ श्रीनारायणी स्तुति, ४ श्रीदेवी-सूक्त की ज्ञान-दायिनी विस्तृत-व्याख्या ।

**३—मन्त्रात्मक सप्तशती (सजिल्द)** ८०-००

इसमें सप्तशती के प्रत्येक मन्त्र के अनुष्ठान की अभूत-पूर्व अनुभूत विधि दी गई है, जो गुप्तावतार बाबाश्री हिमालय के गुह्यप्रदेश से १६२४ के अनेक वर्षों पूर्व ले आये थे ।

**४—सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती)** ४०-००

'गुप्तवती', 'शान्तनवी' आदि प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर हिन्दी में पहली बार दुर्गा सप्तशती के प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या

**५—सप्तशती-रहस्य** ५-००

सप्तशती का पाठ-क्रम, पुरश्चरण, मन्त्र-प्रयोग एवं प्रश्न-विचार

**६—'विशुद्ध चण्डी' श्री दुर्गा सप्तशती** ६-००

अर्गला, कीलक, कवच, नवार्ण-जप, सप्तशती-न्यास, रहस्य-त्रय—सभी विनियोग व न्यास-युक्त और 'विस्तृत-पूजा-पद्धति' । प्रचलित सप्तशती की पुस्तकों की गम्भीर त्रुटियों को दूर कर 'विशुद्ध मूल पाठ' पहले पहल इस पुस्तक में प्रकाशित हुआ है । भगवती दुर्गा का ध्यान-सम्मत सुन्दर रङ्गीन चित्र दिया गया है । नित्य-पाठ के लिये अनूठा संस्करण ।

**७—श्री दुर्गा सप्तशती (शब्दशः हिन्दी पद्यानुवाद)** ५-००

जो लोग दुर्गा-सप्तशती संस्कृत में नहीं पढ़ सकते, उनके लिये तेरह अध्यायों का यह शब्दशः अनुवाद 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है और इसका पाठ करके सहस्रों बन्धु लाभ उठा रहे हैं ।

**८—श्री दुर्गायण (हिन्दी छन्दानुवाद)** १०-००

अर्गला, कवच, कीलक, रात्रि-सूक्त, तेरह अध्यायों, देवी-सूक्त का अनूठा छन्दानुवाद ।

**९—बीज-त्रयात्मक दुर्गा-सप्तशती** ४-००

रहस्य-तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' अनुष्ठान की विधि ।

**१०—रुद्र-चण्डी** ६-००

'रुद्र-यामल तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' अनुष्ठान की विधि

---

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक : ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६